ओ३म्

स्थापना वर्ष:१९४२

नूतन निष्काम पत्रिका

नूतन निष्काम पत्रिका * वर्ष-9 * अंक-5 * मुम्बई * मई 2018 * मूल्य-रु.9/-

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती

अमृतधारा: वेदोपदेश

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

ओ३म् व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते।। (यजु. १९-३०)

व्याख्याकार-**स्वामी दर्शनानन्द**

सत्य को कब जान पाता है? - इस वेदमन्त्र में परमात्मा जीवों को इस बात का उपदेश करते हैं कि जब जीव सत्य को जानने के लिए व्रत धारण करता है अर्थात् दृढ़ निश्चय से पूरा करने का व्रत करता है और सत्य-असत्य की खोज में निरंतर लगा रहता है, तब उसमें सत्य के जानने का अधिकार अर्थात् योग्यता उत्पन्न होती है, और जब उस योग्यता द्वारा गुरु से दीक्षा लेकर उसके आचरण करता है तो दक्षता अर्थात् उत्तम सुख और संसार में सन्मान को प्राप्त करता है; जब इस प्रकार संसार में सत्य की प्राप्ति से मान व उत्तम सुख एवं शान्ति की प्राप्ति होती है तो उसको देखकर दूसरे व्यक्तियों को सत्य में श्रद्धा उत्पन्न होती है और वह स्वयं भी सत्य पर अटल विश्वास करते हुए उसके अनुसार आचरण करने वाला बनता है। जब तक परमात्मा के इस आदेश का पालन न किया जाय, तब तक कोई सत्य में श्रद्धा नहीं करवा सकता।

लक्ष्य-सिद्धि के लिए चार आश्रम- परमात्मा के इस नियम से चार आश्रम बनाए गए हैं। जब मनुष्य परमात्मा के जानने के लिए ब्रह्मचर्य आश्रम के व्रत को धारण करके उसमें वेदों का निरंतर स्वाध्याय (पठन-पाठन) करता है और उसके अनुसार प्रत्येक वेदांग को भली प्रकार समझकर वेदार्थ द्वारा पदार्थों के जानने के लिए पुरुषार्थ करता है तो उसको परमात्मा के जानने की विधि, अभ्यास एवं वैराग्य से मन को एकाग्र करके समाधि द्वारा परमात्मा को जानने की क्षमता प्राप्त हो जाती है; और तब समाधि की विधि को जानकर क्रमवार गृहस्थ आश्रम को धारकर कर्मों को करता चला जाता है।

जब मन व इंद्रियों का वशीकरण होता है- जब कर्म करने से दुःख की प्राप्ति होती है तो वह संसार के पदार्थों को दुःख का साधन समझकर उनसे पृथक् होने के लिए वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करके धीरे-धीरे अपनी इंद्रियों को वश में करने का यत्न करता है। जब इस प्रकार से आचरण करने पर मन व इन्द्रियों वशीकरण करने में सफलता प्राप्त हो जाती है, तब वह संसार के विषयों से अलग होकर केवल परमात्मा से प्रेम करता है और उसकी उपासना से आनन्द - प्राप्ति देखकर जगत् के सकल व्यवहार को तजकर ईश्वर के प्रेम में मग्न हो जाता है।

प्रकृति किनको खींचती है- इस प्रकार के संन्यासियों का दर्शन करके लोगों में परमात्मा के प्रति श्रद्धा व प्रेम पैदा होता है। जो जन परमात्मा की प्राप्ति के लिए ब्रह्मचर्य रूपी व्रत को भी धारण नहीं करते, वे किस प्रकार गृहस्थ आश्रम में आकर ईश्वर को जानने का अधिकार प्राप्त कर सकते हैं? ऐसे ही लोग ईश्वर के जानने का अधिकार न होने से मूर्ति-पूजन आदि अविद्या के कामों में लग जाते हैं। जिन लोगों ने न तो ब्रह्मचर्य आश्रम में ही वेद-अध्ययन किया है और न ही उनको गृहस्थ आश्रम में पञ्च-यज्ञादि नित्य कर्मों के करने का अभ्यास है, वे लोग किस प्रकार से परमात्मा को जान सकते हैं। उनको परमेश्वर में कैसे श्रद्धा, प्रेम व भक्ति-भाव उत्पन्न हो सकता है! ऐसे ही लोग अर्थार्थी तथा वाममार्गी बन जाते हैं, क्योंकि इंद्रियों के वशीकरण न कर सकने से उनको मन को वश में करने का अवसर नहीं मिलता। मन उनको प्रतिक्षण प्रकृति के पदार्थों की ओर ही प्रवृत्त करता अथवा खींचता है। वे अपना समस्त जीवन इसकी दासता में व्यतीत कर देते हैं।

जिन्हें सुख-दुःख के साधनों का यथार्थ ज्ञान नहीं- वे स्वयं को चाहे अत्यंत योग्य व बुद्धिमान् समझते हैं, परंतु वास्तव में मूर्ख हैं, क्योंकि उनको सुख-दुःख के साधनों का यथार्थ ज्ञान नहीं। वे अविद्या के कारण दुःख देने वाली वस्तुओं को सुख का साधन समझते हैं और सुख देने वाले परमात्मा की सत्ता से सर्वथा विमुख हैं अथवा उनको उसमें तनिक भी श्रद्धा नहीं।

वेदज्ञान द्वारा ही ईश्वर का ज्ञान- परमात्मा का ज्ञान, परमात्मा के दिये गए सद्ज्ञान वेद के द्वारा ही संभव है। जिस प्रकार कोई व्यक्ति सूर्य को दीपक के प्रकाश से नहीं देख सकता, सूर्य की किरणें ही सूर्य को दिखला सकती हैं, इसी प्रकार कोई मनुष्य मनुष्यकृत ग्रंथ अथवा मानवीय शक्ति से परमात्मा को नहीं जान सकता, न ही परमात्मा को जाने बिना सुख और शांति को प्राप्त कर सकता है। मुक्ति का साधन केवल परमात्मा का ज्ञान है। वही सारे संसार में शांति का उपाय है। उसको जानने के लिए परमात्मा ने वर्ण-आश्रम के पड़ावों से निकलते हुए अपने ध्येयधाम तक पहुँचने का उपदेश दिया है। जो लोग परमात्मा के बतलाए मार्ग के विपरीत चलते हैं, वे प्रकृति की उपासना की अंधी गुफा में गिरकर आत्मिक शांति से दूर जा पड़ते हैं। परमात्मा कृपा करें तो बहुत-कुछ प्राप्त हो सकता है।

ओ३म् शांति! शांति! शांति!

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ९ अंक ४ (मई–२०१८)

- दयानंदाब्द : १९५, विक्रम सम्वत् : २०७५
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११९

प्रबन्ध संपादक : **चन्द्रगुप्त आर्य**
संपादक : **संगीत आर्य**
सह संपादक : **संदीप आर्य**
कार्यकारी संपादक : **विनोद कुमार शास्त्री/ लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य, यशबाला गुप्ता.**

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/– • एक प्रति : रु. ९/–
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/– • वार्षिक : रु. १००/–
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/– • आजीवन : रु. १०००/–
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।

वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/– प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/–

चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। **'नूतन निष्काम पत्रिका'** का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.), मुंबई –५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
अमृतधारा: वेदोपदेश	२
सम्पादकीय	३
महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने ईश्वरीय	४
दैव्यजनों की सङ्गति	५-६
सुधार की प्रारम्भिक दशा	७-८
प्रथम समुल्लास:	९
बुजुर्गों ने दी समाज को 'पर्यावरण की सीख'	१०
क्या ईश्वर, जीव, प्रकृति का पृथक्त्व.....	११-१२
महर्षि दयानन्द और महात्मा अमींचन्द	१३
पूना का दूसरा प्रवचन	१४-१५
पं. रामचन्द्र देहलवी	१६

सम्पादकीय

आर्य समाज और मखौटा

बचपन में हम सबने खिलौने वाले की दुकान पर मुखौटे बिकते देखे हैं। असली चेहरे पर उसे ओढ़ने से चेहरा छुप जाता है और मुखौटे का रूप सामने आता है। कई बार ऐसा भी होता है कि बच्चे के सामने उसका पिता हास्य पैदा करने वाला मुखौटा पहनकर बच्चे को हंसाता है तो कभी भय पैदा करने वाला डरावना मुखौटा पहनकर उसके सामने आता है तो बच्चा सहम जाता है और पिता से कहता है कि इसे हटाओ यह अच्छा नहीं है, इससे मुझे डर लग रहा है।

यह साधारण सी स्थिति तब भयानक बन जाती है जब पिता के मुखौटे को पहनकर कोई कपटी बच्चे के सामने आ जाये। बच्चा उसे पिता ही समझ रहा है और आने वाले खतरे से अनजान है।अस्तु।

इस बात को आपके सामने रखने का कारण यह है कि ऊपरी मुखौटा तो दिख जाता है और मुख से हटाते ही असली व्यक्ति दिख जाता है लेकिन उस मुखौटे को आप कैसे उतारोगे जिसे अनार्य विचारों, राजनैतिक स्वार्थ, धन का दोहन, संगठन के मूल स्वरूप में बिगाड़, अपना व्यक्गिगत एजेंडा जैसे कई मुखौटे ओढ़कर हम आर्य समाज में आ रहे हैं।

हम किसी भी धार्मिक स्थल, विभिन्न विचारों के सामाजिक - राजनैतिक संगठन जैसी किसी के भी पवित्र स्थान, मंच पर जायें तो उन्हीं के रस्म रिवाज के अनुसार व्यवहार करना पड़ता है। वह संगठन अपने मूल स्वरूप को बनाये रखता है। ये अलग बात है कि कोई उनसे जुड़ा व्यक्ति अलग विचार रखता हो, किन्तु संगठन सर्वोपरि होता है।

किन्तु आर्य समाज संगठन में ठीक इसके विपरीत दिखायी देने लग रहा है। चंदा भरकर समाज का सदस्य बन अधिकार प्राप्त कर वह धीरे धीरे अपना असली मुखौटा सामने लाने लगता है। उसके लिये आर्य समाज सिर्फ एक मंच है अपना लक्ष्य साधने का। ऐसे व्यक्ति अपने लक्ष्य में सफल हों न हों किन्तु समाज का अहित कर रहे हैं और समाज के मूलस्वरूप को बिगाड़ने का अनधिकृत, कुत्सित प्रयास कर रहे हैं जिसके परिणाम स्वरूप आर्य समाज का मूल स्वरूप बिगड़ता दिख रहा है। महर्षि के मूल उद्देश्य वेद के प्रचार से हम दूर होते जा रहे हैं, वैदिक वर्ण व्यवस्था, परोपकार के कार्य से हम दूर होते जा रहे हैं। हमारे पूर्ववती सबको जोड़ने, सुधारने का उद्देश्य लेकर एकत्रित हुये थे और आज हम अपना स्वाभिमान छोड़कर दूसरों में घुलने मिलने का अनर्थक प्रयास कर रहे हैं। आओ हम सब मिलकर इस आर्य समाज को आर्य समाज ही रहने देने का प्रयास करें।

संगीत आर्य
मो.: ९३२३५ ७३८९२

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने ईश्वरीय व्यवस्था और मानवीय अवस्था का बोध कराया

(सभी अध्यात्म वर्ग के पाठको की सेवा में सरल संक्षिप्त विवेचना)

भारत वासियों के अहोभाग्य से महाभारत काल के बाद अट्ठाहवी शताब्दि में भारत की पुण्य भूमि टकांरा (गुजरात) में युग पुरुष महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का जन्म एक साम्भ्रान्त ब्रह्मण परिवार में हुआ था। उन्होंने ईश्वरीय वाणी वेदानुसार और ईश्वरीय व्यवस्था सृष्टि क्रमानुसार वैज्ञानिक आधार पर ईश्वर का सत्य स्वरूप और मानवीय कर्म व्यवस्था का उपदेश दिया। उन्होंने सर्वप्रथम त्रेतवाद का बोध कराया, उन्होंने शुद्ध ज्ञान, शुद्ध उपासना का संसार को ज्ञान कराया। उन्होंने ज्ञान दिया, जीव ब्रह्म और प्रकृति तीनो अनादि और निरन्तर रहने वाली सत्ताऐं हैं। उन्होंने सर्वप्रथम स्वाधीनता व समानता व पंथ निर्पेक्ष का मार्ग बताया उन्होंने कोई पंथों की बात नहीं की उन्होंने वेद और योग का पथ बताया। उन्होंने कोई भी मत व सम्प्रदाय खड़ा नहीं किया, अपितु प्राचीन आर्यावर्त की संस्कृति व संस्कारों को बढ़ाया।

ईश्वरीय व्यवस्था और मानवों द्वारा मान्य भगवानों की अवस्था पर विचार

१. जो सृष्टि रचना ईश्वर करता है उसे मनुष्यों द्वारा मान्य भगवान नहीं कर सकते हैं। बल्कि ईश्वरीय सृष्टि रचना में जीवन बिताये थे।

२. ईश्वर सारे ब्रह्माण्ड का रचियता है और मनुष्य द्वारा मान्य भगवान ईश्वर के नियम व व्यवस्था में रहता है।

३. ईश्वर सारे जीवों का पालन पोषण करता है और जीवों के लिये जीवन यापन के तमाम पदार्थो का निर्माण करता है। मनुष्य मान्य रुपी भगवान ईश्वर के नियम में रहता है और ईश्वर द्वारा रचित पदार्थों का सेवन करके जीवित रहता है। और ईश्वर की रचना के अन्तर्गत रहता है।

४. ईश्वर फल दाता है और जीवों के कर्मों का यथा योग्य क्रमानुसार न्याय पूर्वक फल देता है। और मनुष्यों द्वारा मान्य भगवान ईश्वर द्वारा कर्म फल व्यवस्था के अन्दर जीवित रहता है।

५. ईश्वर सारे जीवों को भोग सामग्री प्रदान करता है और मनुष्य द्वारा मान्य भगवान ईश्वर द्वारा प्रदत भोग सामग्री के कारण ही जीवित रहता है।

६. ईश्वर सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय करता है और वह नियम निरन्तर चलता रहता है। और मनुष्यों द्वारा मान्य भगवान ईश्वर की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय की व्यवस्था में रहता है।

७. ईश्वर अजन्मा और अविनाशी है। मानवों द्वारा भगवान जन्मा व एक देशी और नाश्वान है, अर्थात जन्म और मृत्यू के बन्धन में रहता है।

८. ईश्वर सृष्टि क्रम द्वारा जीवों के लिये ऋतुए, तथा अन्न व वनस्पतियों की रचना करता है। और मनुष्यों द्वारा मान्य भगवान, ईश्वर द्वारा रचित ऋतुओं का वनस्पतियों व अन्न द्वारा जीवन जीता है।

९. ईश्वर निराकार है व सर्वशक्तिमान है व सर्वव्यापक है। और मनुष्यों द्वारा मान्य भगवान साकार जन्म मृत्यु के बन्धन में रहता है और अल्प सामर्थ्य वाला है, और एक देशीय होता है और भिन्न-भिन्न आकार वाला होता है इसलिये निराकार ईश्वर ही सत्य है, हमें उसी को मानना चाहिए।

ईश्वरीय व्यवस्था और मानवों और मानवीय कर्म व्यवस्था पर संक्षिप्त विचार

ईश्वरीय व्यवस्था में जीव सभी प्रकार के कर्मों का अर्थात सभी प्रकार के जीवों के प्रति किये गये कर्मो का यथा योग्य सुख-दुख रुपी फल प्राप्त होता हैं इस व्यवस्था के दृष्टिकोण से किसी भी जीव के प्रति अपराध पर चाहे वह पशु पक्षी, मानव, अजन्मा शिशु आदि को भी क्यों न हो कोई भेद नहीं किया जाता।

मानवीय कर्म व्यवस्था

मानवीय कर्म फल व्यवस्रूथा में मानव के उन्हीं अशुभ कर्मों को दण्ड योग्य माना जाता है जो दूसरे मानव के प्रति किये जाते हैं। किन्तु कार्य ऐसे है जो अपराध की श्रेणी में नहीं आते जैसे पशु पक्षियों पर किये गये अत्याचार। राष्ट्रीय पक्षियों को छोडकर ऐसे ही भ्रूण हत्या को कानूनी मान्यता प्राप्त होते हुए भी बच्चों की हत्या को भी हत्या का अपराध नहीं माना जाता।

ईश्वरीय द्वारा रचित जाति व्यवस्था और मनुष्यों द्वारा मान्य जाति व्यवस्था

ईश्वर द्वारा रचित जीव जैसे पशु, पक्षी, गौ. अश्व, हाथी, सांप, बिच्छु, कौवा, कोयल, मेंढंक, शेर, चीता, भैंस, बकरी, व अनन्त प्राणीयों की रचना की गयी है, और जो शरीर जिस जीव को दे दिया गया है, वह आजीवन इसी रुप क्रमानुसार संसार में जीवों को वैसे ही शरीरों की रचना करता है, जो कभी बदलते नहीं है। वैसे ही प्राणियों में श्रेष्ट मनुष्यों की भी भिन्न-भिन्न शक्लों द्वारा रचना की है। और गुण क्रमानुसार मनुष्यों को ब्राहामण, क्षत्रिय, वैश्य, व शूद्र का वर्ष प्रदान की है, किन्तु उसमें कोई भी भेद-भाव नहीं है और राह उत्पति का कर्म, सृष्टि उत्पति का कर्म सृष्टि उत्पति और प्रलय के उपरान्त भी निरन्तर चलता रहता है।

मनुष्यों ने अपने अज्ञान व स्वार्थ सिद्धी के कारण मनुष्यों को आपस में बांट दिया है, और स्वरचित जाति व्यवस्था बनाकर आपस में एक

शेष पृष्ठ ६ देखिये

दैव्यजनों की सङ्गति

आचार्य प्रियव्रत

यत्किं चेदं वरूण दैव्ये जनेऽ
भिद्रोहं मनुष्या ३श्चरामसि।
अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम
मा नस्तस्मादेनसो वेद रीरिषः ।।५।।

अर्थ- (**वरुण**) हे पाप से बचानेवाले प्रभो! (**मनुष्याः**) हम साधारण कोटि के मनुष्य (**दैव्ये**) प्रकाशयुक्त ज्ञानी (**जने**) जनों के प्रति (**यत्**) जो (**किंच**) कुछ भी (**इदम्**) यह (**द्रोहम्**) द्रोह (**चरामसि**) करते हैं और इसलिए (**अचित्ती**) अज्ञान से (**यत्**) जो (**तव**) तेरे (**धर्मा**) नियमों को (**युयोपिम**) तोड़ देते हैं (**देव**) हे दिव्यशक्तियोंवाले प्रभो! (**तस्मात्**) उस (एनसः) पाप से (नः) हमें (मा) मत (रीरिषः) मारिए।

जब हमसे कोई पाप हो जाता है तब भगवान् हमें मारते हैं, दण्ड देते हैं। प्रभु वरुण हैं, हमें पाप से बचानेवाले हैं, इसलिए वे पाप से बचाने के लिए ही हमें पाप करने पर दण्ड देते हैं। जिस पाप को करने पर हमें प्रभु की प्यार-भरी मार सहनी पड़ती है, वह पाप हमसे क्यों हो जाता है? हम क्यों कोई पाप कर बैठते है? और उस पाप का स्वरूप क्या है? हमारा कौन-सा कर्म पाप हो जाता है और कौन-सा कर्म पुण्य रहता है?

मन्त्र में प्रभु के धर्मों को तोड़ना ही पाप बताया गया है। मन्त्र में कहा गया है कि ''हे देव हम जो तेरे धर्मों को तोड़ देते है, उस पाप से हमें मत मारिए।'' अतः स्पष्टरूप में प्रभु के धर्मों को तोड़ना ही पाप है। प्रभु ने संसार के प्रत्येक क्षेत्र के लिए और प्रत्येक पदार्थ के लिए कुछ धर्म बनाये हैं। धर्म का शब्दार्थ है जो धारण करे, बाँधकर रक्खे, जिसके कारण किसी पदार्थ का अपना स्वरूप बना रहे, इसलिए किसी प्रदार्थ के जो गुण है जिनके होने से वह पदार्थ, वह पदार्थ रहता है, यदि वे गुण उसमें न हों तो वह पदार्थ वह पदार्थ न कहा जा कर कोई और पदार्थ कहा जाता, उन गुणों को उस पदार्थ के धर्म कहा जाता है। उदाहरण के लिए अग्नि के प्रकाश, उष्णता और ज्वलन आदि गुणों को उसका धर्म कहा जाता है। पदार्थ के इन धर्मों को कई बार व्रत, नियम आदि शब्दों से भी कहा जाता है। जब हम परमात्मा के बनाये पदार्थों के इन धर्मों को, इन नियमों को तोड़ देते हैं, इनका उल्लंघन कर देते हैं, तब हमसे पाप हो जाता है। प्रभु के बनाये धर्मों, नियमों का उल्लंघन करके हम जो आचरण करते हैं, उस हमारे आचरण को पाप कहा जाता है। साधारण बोल-चाल में मनुष्यों के पारस्परिक व्यवहार में एक दूसरे के साथ बर्ताव करने के जो धर्म नियम या कर्तव्य हैं उन्हीं का भंग करने पर हम किसी व्यक्ति को पापी कहते है, परन्तु व्यापक दृष्टि से तो किसी भी पदार्थ के धर्मों का उल्लंघन करके किया हुआ हमारा आचरण पाप कहलाएगा। हमें पता है कि आग का एक धर्म जलाना भी है। यदि हम आग के इस धर्म का ध्यान न रखकर आग में हाथ डालेंगे तो हमारा हाथ जल जाएगा। हमें हाथ जल जाने का कष्ट इसलिए उठाना पड़ा कि हमने आग के एक धर्म का ध्यान न रखते हुए उसके साथ जैसा चाहिए था वैसा आचरण नहीं किया। हमने आग के साथ बर्ताव करने में अपनी ओर से एक पाप किया। पाप का फल तो कष्ट होगा ही। हमारे आचरण से आग को तो कोई कष्ट नहीं होता, क्योंकि वह जड़ है, परन्तु हमारा आचरण मिथ्याचरण था, अग्नि के धर्मों के प्रतिकूल था, इसलिए वह पाप ही है। जब हम किसी भी पदार्थ के साथ किसी विशेष सम्बन्ध में आते है तब उस सम्बन्ध के अनुसार हमारे और उस पदार्थ के परस्पर बर्ताव करने के जो धर्म हैं, उनका ध्यान न रखकर, उनके प्रतिकूल जो हम आचरण कर बैठते हैं उसी का नाम पाप है। चेतन प्राणियों के साथ हमारे इस प्रतिकूल आचरण से उनको कष्ट भी पहुँचता है। जड़ पदार्थों के साथ प्रतिकूल आचरण से उनको कष्ट नहीं पहुँचता। प्रभु ने यह व्यवस्था रक्खी है कि जड़ पदार्थों के साथ प्रतिकूल आचरण करने से तो हमे तत्काल उसके प्रतिफल में दुःख मिल जाता है और चेतन प्राणियों के साथ प्रतिकूल आचरण करने से हमें उसके प्रतिफल में कई बार तत्काल और कई बार कालान्तर में दुःख प्राप्त होता है। पाप का फल दुःख अवश्य मिलता है, चाहे वह तत्काल मिले चाहे कालान्तर में।

हम प्रभु के बनाये धर्मों का, नियमों का भङ्ग क्यों कर देते हैं और इस प्रकार पाप क्यों कर बैठते हैं? इसका कारण होता है हमारा अज्ञान। यदि हमें प्रत्येक पदार्थ का और प्रत्येक अवस्था का पूरा ज्ञान हो तो हम प्रभु के नियमों का कभी भङ्ग न करें और इस प्रकार कभी पाप के भागी न बनें। हमारे सब अनर्थों की, सब रोगों की, सब कष्टों की जड़ हमारा अज्ञान है।

हमारा अज्ञान दूर होकर हमें ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है? इसके लिए हमें ''दैवजनो'' की सङ्गति करनी चाहिए। हम जैसी सङ्गति करते हैं वैसे ही हम बन जाया करते हैं। मूर्खजनों की सङ्गति में रहने से हम मूर्ख हो जाते है और ''दैव्यजनों'' की सङ्गति में रहने से हम भी ''दैव्यजन'' बन जाते हैं। ''दिव्'' का अर्थ होता है प्रकाश जो सदा ''दिव्'' में, प्रकाश में रहें ऐसे लोगों को ''दैवजन'' कहते हैं। जो लोग प्रकाशयुक्त हैं, ज्ञानी है, वे ''दैव्यजन'' हैं। संसार के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों के पदार्थों से सम्बन्ध रखनेवाली विद्याओं और शास्त्रों के पदार्थों से सम्बन्ध रखनेवाली विद्याओं और शास्त्रों के ज्ञाता पण्डितों को-ब्राह्मणों को ''दैव्यजन'' कहते हैं, क्योंकि उनके पास ज्ञान का, सब रहस्यों को दिखा देनेवाला महान् प्रकाश है। जहाँ विभिन्न विद्याओं के पण्डित लोग ''दैव्यजन'' कहलाते हैं वहाँ वरून प्रभु, वरूणीय भगवान् दैव्यजनों के महा दैव्यजन हैं। उन-सा प्रकाश तो किसी के पास नहीं है। हमें पाप के मूल अज्ञान का नाश करने के लिए ''दैव्यजनों'' की सङ्गति में बैठना चाहिए। विभिन्न पण्डितों की सङ्गति में बैठकर विश्व के विभिन्न पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए- उनके धर्म जानने चाहिएँ। इसके साथ ही हमें महा ''दैवजन'' प्रभु की सङ्गति भी करनी चाहिए। प्रभु ने सृष्टि के आरम्भ में हमारे कल्याण के लिए वेद का उपदेश दिया है। उसका अध्ययन करने से हमें अनेक आवश्यक बातों के रहस्य पता लगेंगे। प्रभु के वेद को पढ़ना प्रभु की सङ्गति में बैठना है। इसके अतिरिक्त हमें प्रातः सायं प्रभु की

उपासना में, उनकी भक्ति में बैठकर भी उनकी सङ्गति प्राप्त करनी चाहिए। सच्चे हृदय से प्रभु की उपासना में बैठनेवाले व्यक्ति को अनेक बार प्रभु की प्रेरणा प्राप्त होती है जो कितने ही रहस्यों को खोलकर हमें प्रकाश दे जाती है और यों भी हमें उपासना के समय प्रभु के गुणों पर तन्मय होकर विचार करने से अनेक शिक्षाएँ प्राप्त होती हैं, जिनका अनुसरण करने से हमारे अनेक प्रकार के अन्धकार कट सकते हैं। इस प्रकार विद्वान् ब्राह्मणों और परमात्मा इन दो ''दैव्यजनों'' की सङ्गति में बैठने से हमें आवश्यक ज्ञान प्राप्त होगा, जिसका फल यह होगा कि हम पाप से बच जाएँगे और सदा सुख में रहेंगे। हम प्राय: देव्यजनों से द्रोह करते हैं, उनसे अप्रीति करते हैं। करते हैं। इस द्रोह, इस अप्रीति का फल यह होता है कि हम उनकी प्रकाश देनेवाली सङ्गति से दूर रहते हैं। हमें प्रकाश न मिलने से, ज्ञान प्राप्त न हो सकने से हम पापाचरण में प्रवृत्त हो जाते हैं और इस प्रकार भाँति-भाँति के कष्ट हमें भोगने पड़ते हैं। पापजन्य कष्ट से बचने का एकमात्र उपाय यही है कि हम ''दैव्यजनों'' की सङ्गति में बैठकर ज्ञान का प्रकाश प्राप्त करें और इस प्रकार स्वयं भी साधारण मनुष्य न रहकर ''दैव्यजन''-प्रकाशवाले व्यक्ति बन जाएँ। इसके लिए हमें ''दैव्यजनों'' से प्रीति जोड़कर उनकी सङ्गति में बैठने का अभ्यास डालना चाहिए।

हे प्रभो! हमें हमारे पापजन्य दण्ड की मार से मत मारिए। हमें अपनी और अन्य दैव्यजनों की सङ्गति में बैठने की बुद्धि और शक्ति दीजिए जिससे हम पाप के मूल अज्ञान से दूर रह सकें। हे देव! हमपर यह कृपा करके हमें दु:ख सागर से उबारकर आनन्दोदधि में निमग्न कीजिए।

पृष्ठ ४ से चालू....

संघर्ष की दीवार खडी कर रखी है। जो ईश्वरीय व्यवस्था में महापाप है और मनुष्य जाति के दुखो का कारण है। जब तक मनुष्य वर्ण व्यवस्थानुसार नहीं चलता और वर्तमान तथा कथित जाति व्यवस्था में घुलता रहेगा, तब तक कभी भी मानवीय जगत में पूर्ण सुख शान्ति मिल ही नहीं सकती है। यदि ईश्वर का आर्शीवाद प्राप्त करना चाहते हो तो अपने नाम के जाति वाचक शब्द निकाल दीजिये। इस कार्य से हम ईश्वर के अति नजदीक हो जायेंगे।

ईश्वरीय व्यवस्था में कभी भी जीवात्मा की मृत्यू नहीं होती है।

ईश्वरीय कर्म फल व्यवस्था में जीव की कभी मृत्यू नहीं होती है। केवल शरीर का वियोग और रूपान्तर होता है। और जीव को अपने कर्मो का शुभा-शुभ परिणाम रूपी सुख या दुख भोगना पडता है। और जीव व ईश्वर के नित्य होने से ईश्वर की कर्म व्यवस्था भी नित्य है। बिना कर्मो का फल भोगे कर्म नष्ट नहीं होते हैं, संसार में मनुष्य का सहयोग होता है और नहीं संयोग होता है वहाँ वियोग अवश्य होता है किन्तु ईश्वर के साथ कभी भी वियोग नहीं होता सदा संयोग हीं संयोग रहता है।

मानवीय कर्मफल व्यवस्था में कर्मफल की अवधारणा व्यक्ति के जीवित रहते ही सम्भव है। व्यक्ति की मृत्यू होते ही उसके शुभाशुभ कर्म मानवीय दण्ड व्यवस्था में समाप्त हो जाते है और वह कर्म ईश्वरीय कर्मफल व्यवस्था में आ जाते है। अत: कर्मफल दण्ड व्यवस्था व्यक्ति के जीवित रहते ही सम्भव है। ईश्वरीय व्यवस्था में जीव को कर्मफल अगले जन्म में शुभाशुभ का फल भोगना पडता है।

ईश्वरीय कर्मफल व्यवस्था में साक्ष्यों का कोई स्थान नहीं है।

ईश्वर सर्वव्यापक तथा सर्वज्ञ होने के कारण सभी जीवों के कर्मों को यथावत जानता है उसके कर्मफल व्यवस्था में साक्ष्यों को कोई स्थान नहीं है। वह प्रत्येक जीवों का कर्मफल न्यायनुसार करता है।

ईश्वरीय कर्मफल व्यवस्था में सदैव न्याय होता है।

ईश्वरीय कर्मफल व्यवस्था में ईश्वर सर्वव्यापक और सर्वज्ञ होने के कारण सबके कर्मो को यथावत जानता है उनके जीव के किये हुए कर्मों का यथावत न्याय करता है।

मानवीय कर्म दण्ड व्यवस्था में सीमित ज्ञान के कारण व मानवीय दण्ड व्यवस्था में साक्ष्यों के अभाव के कारण माफी की अब धारण बनी रहती है। वर्तमान शासन व्यवस्था में राष्ट्राध्यक्ष के पास भी विशिष्ट परिस्थितियों में विशिष्ट कारणों के आधार को उसके दण्ड को माफ करने का अधिकार रहता है।

ईश्वरीय कर्मफल या दण्ड व्यवस्था में साक्षी की आवश्यकता नहीं होती है।

ईश्वरीय कर्मफल व्यवस्था में ईश्वर सर्वव्यापक और सर्वज्ञ होने के कारण सबके कर्मो को यथावत जानता है अत: जीव के किये हुए कर्मों का यथावत न्याय करता है।

मानवीय कर्म व्यवस्था में न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत व्यक्ति के अपराध का निधारण किया जाता है। यदि उसने वह अपराध किया है और साक्ष्यों के आधार पर प्रमाणित नहीं होता है तो उसे दंड दिया जाता है। जबकि ईश्वरीय व्यवस्था में ऐसा नहीं है।

-: नोट :-

यह विषय विस्तृत है, और पूर्ण पहेलुओं का संकेत इस छोटे से लेख में सम्भव नहीं है। मेरा आशय तो केवल इतना है कि आज संसार योगवादी चकाचौध में ईश्वरीय कर्मफल व्यवस्था को भूलता जा रहा है। और निज स्वार्थ की गहरी खाई में गिरता जा रहा है। आज संसार में महर्षि देव दयानन्द जैसे कई महापुरूषों की अति आवश्यकता है। जो संसार का ध्यान ईश्वरीय गुण कर्म व्यवस्था और मानवीय गुण कर्म व्यवस्था का भेद का ज्ञान प्रदान कर सके। आज सारा संसार आर्य समाज जैसी उच्च आध्यात्म संगठन की ओर अपने उद्धार के लिये आशा भरी निगाहों से देख रहा है।

गढ़ निवास मोहकमपुर
देहरादून उत्तराखण्ड।
मो. : ९४११५१२०१९

सुधार की प्रारम्भिक दशा

(ई. १८६३ से १८६६ तक)

पं. इन्द्र विद्यावाचस्पति

यह समझना भूल है कि स्वामी दयानन्द के गुरू के पास से आते ही सुधार का पूरा कार्यक्रम विस्तीर्ण कर दिया था। गुरू के पास से विदा होने के समय स्वामी जी के पास ये वस्तुएँ थीं-

(१) उनके पास संस्कृत व्याकरण और दर्शनों का पाण्डित्य था;

(२) अखण्ड ब्रह्मचर्य, प्रतिभा, उत्साह और व्याख्यान शक्ति के गुण थे, (३) विद्वानों, साधुओं पन्थाइयों की दशा देखकर निश्चय हो चुका था कि धर्म की दशा बिगड़ी हुई है। सुधार करने और विशुद्ध धर्म का प्रचार करने की अभिलाषा विद्यमान थी। एक सुधारक में जिन गुणों की बीजरूप से आवश्यकता होती है, वे स्वामी दयानन्द में विद्यमान थे। साथ ही यह भी निश्चित है कि सुधार-कार्य के यौवन में स्वामी दयानन्द के शस्त्रागार में जो-जो साधन सन्नद्ध हो गये थे, उनमें से कुछेक का विकास होना बाकी था- (१) अभी स्वामी जी को वेद पूर्णत: प्राप्त नहीं हुए थे। वेदों की पुस्तकों तक की खोज अभी शेष थी, उनकी व्याख्या या उनमें एकान्त की अभी चर्चा तक नहीं थी: (२) संसार का विस्तृत ज्ञान संसार में भ्रमण करने पर ही प्राप्त होता है। अभी तक गृहस्थों और पुजारियों की सृष्टि में अधिक प्रवेश का अवसर न मिलने से रोग का पूरा-पूरा ज्ञान भी नहीं हुआ था; (३) रोग का ज्ञान होने पर भी सुधाररूपी दवा का ठीक प्रयोग तभी हो सकता है, जब वैद्य भी कुछ परीक्षण कर ले। वैद्य पहले एक दवा का प्रयोग करता है, फिर उसके फल यदि सन्तोषदायक हों तो उसी को जारी रखता है अन्यथा बदल देता है। चतुर-से-चतुर वैद्य भी ठीक परीक्षण करके ही ठीक औषधि पर पहुँचता है।

पहले तीन साल तक स्वामी दयानन्द ने जो सुधार का कार्य किया, वह एक प्रकार से परीक्षणात्मक था। वह उस सर्वतोगामी सुधार का प्रारम्भिक पड़ाव था, जो कुछ वर्ष कार्य पीछे भारत के विशाल कार्य को प्रकम्पित कर देने वाला था। हम इस प्रारम्भिक कार्य में भी उन सब गुणों को बीज-रूप में पाते हैं, जो बाद में वृक्षरूप में परिणत होकर सफलता के साधन हुए. परन्तु बाद में सुधार के कार्यक्रम में जो पूर्णता आ गई थी वह अभी नहीं दिखाई देती। सुधाररूपी चित्र की बाह्य रेखायें तैयार थीं, परन्तु उसमें रंग और छाया का स्थान खाली था, जिसे भरने के लिए समय और अनुभव की आवश्यकता थी।

इस प्रारम्भिक तीन सालों में स्वामी जी ने जो सुधार उपस्थित किये, उनमें से पहला और मुख्य स्थान मूर्ति-पूजा के खण्डन का है। मूर्ति-पूजा में उनका विश्वास उसी क्षण से हिल चुका था, जिस क्षण उन्होंने शिवरात्रि की अँधियारी में शिवलिंग के ऊपर से चूहे को चावल उठाते हुए देखा था। उस समय जो अश्रद्धा उत्पन्न हुई, वह सत्संग, विद्याभ्यास और विचार से विरोधी विश्वास के रूप में परिणत हो गई। मूर्ति-पूजा को भ्रमात्मक मानकर परमात्मा के निराकार-निर्दोष अद्वितीय स्वरूप का प्रतिपादन करना स्वामी दयानन्द का प्रारम्भ से ही लक्ष्य था। सुधारकों की कसौटी ईश्वर-सम्बन्धी विश्वास है। कोई सुधारक या धर्मसंस्थापक उपास्यदेव का जिस स्वरूप में प्रतिपादन करता है, उसी से उसका ऊँच-नीच परखा जाता है। ईश्वर-स्वरूप-सम्बन्धी विचार धर्मों के नपैने हैं। कोई भी धर्मोपदेशक जनता में कोई भारी परिवर्तन नहीं उत्पन्न कर सकता, जब तक वह उनके मूल धार्मिक विचारों को नये रंग पर नहीं मोड़ देता। सुधारक यत्न करते हैं वे आम के पेड़ की पत्तियों में कमल लगाकर फल को मीठा बना सकेंगे, परन्तु निश्चय है कि वे निराश होंगे। ऐसे यत्न हुए और निष्फल हुए। जब तक तने में कलम नहीं लगती, तब तक फल मीठे नहीं हो सकते। स्वामी दयानन्द के हृदय में सुधारों की भावना का प्रारम्भ मूर्ति की सत्ता में अश्रद्धा होने से हुआ था। ईश्वर-सम्बन्धी अशुद्ध विचारों की जड़ में यह पहला कुठारपाथ था। ज्यों-ज्यों विद्या की वृद्धि होती गई, ज्ञान के चक्षु खुलते गये, सद्गुरुओं से उपदेश सुनने का अवसर मिलता गया, त्यों-त्यों वही प्रारम्भिक भावना अधिकाधिक पुष्ट होती गई।

विद्याभ्यास समाप्त करने के अनन्त स्वामी दयानन्द ने जो पहला सन्देश जनता को सुनाया, वह निराकार ईश्वर की उपासना का था। मथुरा से आप सीधे आगरा गये और यमुना के किनारे भैरव के पास लाला गल्लामल रूपचन्द के बगीचे में ठहरे। वहाँ अन्य सदुपदेशों के साथ-साथ मूर्ति-पूजन का खण्डन बराबर जारी रहता था। स्वामी जी ने वहाँ पंचदशी की कथा, प्रारम्भ की। उसकी १६वीं कारिका का उत्तरार्द्ध यह है-' मायां बिम्बो वशीकृत्य तां स्यात्सर्वज्ञ ईश्वरः 'माया में चिदात्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है, वह माया को वश में कर लेता है और ईश्वर कहाता है। कहाँ निराकार ब्रह्म कहाँ उसका प्रतिबिम्ब पड़ना! ईश्वर प्रतिबिम्ब- मात्र है- तत्त्व नहीं। जिस दयानन्द ने वेदों में 'अकायमव्रणमस्नाविरं' इत्यादि शब्दों से विशेषित ब्रह्म का अध्ययन किया था, और ब्रह्म तथा ईश्वर एक ही चिदात्मा के नाम हैं- यह निर्णय किया था, उसे पंचदशी के ऐसे लेखों ने धक्का दिया। स्वामी दयानन्द ने उस समय से पंचदशी और अद्वैतवाद के अन्य ग्रन्थों को त्याज्यों की श्रेणी में लिख लिया।

जीवन-चरितों के लेखकों ने लिखा है कि इन पहले तीन सालों में स्वामी दयानन्द वैष्णव मत का खण्डन करते थे, और शैव मत का प्रतिपादन करते थे। उस समय (और अब भी यही दशा है) मथुरा के आसपास वैष्णव सम्प्रदायों का बड़ा जोर था। मथुरा कृष्ण जी की पुरी है। वह वैष्णवों का गढ़ है। वहाँ रहते हुए आपने उस अन्ध-परम्परा को देखा जो कृष्ण के नाम पर चलाई गई थी। रामानुज और वल्लभ-सम्प्रदाय की लीलाओं के देखने का भी आपको अवसर मिला। भागवतकार ने योगिराज कृष्ण के चरित्र को कई अंशों में कैसा बिगाड़ा है, यह भी आपने भली प्रकार देखा। इस कारण उस समय स्वामी जी के हृदय में वैष्णवों के विश्वासों के प्रति बड़ा क्षोभ था। वृन्दावन की लीलाएँ उन्हें प्रेरित करती थीं कि वह वैष्णव मत का खण्डन करें।

आगरा से धौलपुर ठहरते हुए स्वामी जी ग्वालियर पहुँचे। वहाँ सिन्धिया की ओर से भागवत की कथा का प्रबन्ध हो चुका था। एक विद्वान् साधु आया है, यह सुनकर महाराज ने स्वामी जी को भी निमन्त्रण भेज दिया। स्वामी जी ने कहला भेजा कि भागवत की कथा से दु:ख के सिवा कुछ न मिलेगा, यदि सुख चाहते हो तो गायत्री का पुरश्चरण कराओ। राजा यह सुनकर केवल हँस दिया। भागवत की कथा प्रारम्भ हो गई। उधर स्वामी जी ने संस्कृत में भागवत के खण्डन में व्याख्यान देने आरम्भ किये। स्वामी जी कुछ समय भ्रमण और उपदेश में बिताकर जयपुर पहुँचे और चार मास तक रहे। यहाँ आप उपनिषदों की कथा करते थे, मूर्ति-पूजा का खण्डन करते थे। भागवत के खण्डन में जयपुर में आपने एक विज्ञापन भी प्रकाशित किया, जिसमें बतलाया कि भागवत के कर्ता व्यासदेव नहीं, अपितु बोपदेव नाम का पण्डित है, जिसने

श्रीकृष्ण के निष्कलंक चरित को कलंकित कर दिया है। पुष्कर के मेले में पहुँचकर स्वामी जी ने रामानुज-सम्प्रदाय का खूब खण्डन किया और कण्ठियाँ भी तुड़वाई। इस प्रकार स्वामी जी मूर्ति-पूजा और अन्य सब कुरीतियों के विरूद्ध जो भयंकर तूफान खड़ा करने वाले थे, उसकी पहली चोटें वैष्णवों पर पड़ीं। प्रतीत होता है कि वैष्णवों के विरोध में प्रारम्भिक काल में वह कभी-कभी शैव मत का पक्ष ले लिया करते थे। उसके विषय में दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। प्रथम तो यह कि अभी तक स्वामी जी का सुधार का पूरा प्रोग्राम बना नहीं था- बन रहा था। दूसरी यह बात भी स्वामी जी कहा करते थे कि 'शिव परमात्मा का नाम है, पार्वती के पति को मैं नहीं मानता।'

आपको गोरक्षा की प्रारम्भ से ही धुन थी। १८६६ ई. में मई मास में स्वामी जी अजमेर पहुँचे, और बंसीलाल जी के रिश्तेदार के यहाँ ठहरे। यहाँ आप मेजर ए.जी. डेविडसन कमिश्नर, और कर्नल ब्रुक असिस्टेट कमिश्नर से मिले और उनके सम्मुख गोरक्षा का प्रश्न रखा। स्वामी जी ने उन्हें समझाया कि गौओं की हत्या बन्द करने से राजा और प्रजा दोनों का लाभ है। सरकारी अफसर तो सरकारी अफसर ही ठहरे।' असिस्टेंट कमिश्नर साहब ने स्वामी जी को लाट साहब के नाम एक चिट्ठी लिख दी और कह दिया कि आप 'लाट साहब से अवश्य मिलें। जिस साहब को आप मेरी चिट्ठी दिखायेंगे, वह आपसे अवश्य मिलेगा।' सरकारी अफसर का मीठा इन्कार स्वामी जी ने शान्ति से अंगीकार कर लिया। यह स्वामी जी के हृदय की शुद्धता और सादगी का सबूत है।

प्रारम्भ से अपने विचारों को प्रकट करने के लिए स्वामी जी तीन उपाय काम में लाते थे। व्याख्यान देते थे, विज्ञापन निकालते थे और शास्त्रार्थ के लिए ललकारते थे। व्याख्यान तो सभी स्थानों पर देते थे; जयपुर आदि में लिखित विज्ञापन भी प्रकाशित किए। पहले-पहल आपने ग्वालियर में भागवत के विषय में वैष्णव पण्डितों को चैलेंज दिया। परन्तु सब पौराणिक पण्डित इधर-उधर खिसक गए, कोई सामने नहीं आया। फिर जयपुर में महाराज के सामने व्यास बख्शीराम जी आदि से स्वामी जी का शास्त्रार्थ हुआ। इसमें भी पौराणिक पण्डित निरूत्तर हो गये। शास्त्रार्थों की बहुत धूम तो पुष्कराज में रही। यहाँ आप देर तक ब्रह्माजी के मन्दिर में निवास करते रहे। कभी पण्डों से, कभी ब्राह्मणों से और कभी संन्यासियों से शास्त्रार्थ की चर्चा चलती रहती थी। एक बार बहुत-से पण्डे लेकर स्वामी जी पर चढ़ आये। यों तो स्वामी जी अकेले ही पर्याप्त थे, परन्तु एक सहायक भी आ पहुँचा। ब्रह्मा जी के मन्दिर के पुजारी मानपुरी जी मोटा डण्डा लेकर पहुँच गये और पण्डों को भगा दिया.

अजमेर में लौटकर आपका पादरी रॉबिन्सन और पादरी शूलब्रेड से ईश्वर-जीव आदि विषयों पर ३ दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा। पादरियों को निरुत्तर होना पड़ा। वह स्वामी जी के सुधरे हुए विचारों और वाक्-चातुरी से इतने प्रसन्न हुए कि स्वामी जी को एक पत्र लिखकर दे दिया। जिसमें लिखा था कि 'हमने जीवनभर में ऐसा संस्कृत का विद्वान् नहीं देखा। ऐसे मनुष्य संसार में कम होते हैं।'

इस प्रकार तीनों उपाय, जिनसे एक प्रचारक को काम लेना चाहिए, प्राम्भ से ही ऋषि दयानन्द ने अंगीकार कर लिये थे। आगे इन्हीं साधनों का विकास होता गया, यहाँ तक कि स्वामी जी वाणी, लेख और शास्त्रार्थ- इस तीन प्रकार की युद्ध-सामग्री के पूरे अधीश्वर हो गये।

❑❑❑

हमारा भारत देश

पं. प्रकाशचन्द कविरत्न

हमें भारत देश अति प्यारा है।
हमें भारत देश अति प्यारा है।।
आँखों का ये तारा, यही मन का सहारा, सभी कुछ ये हमारा
हमें भारत देश अति प्यारा है।।
सरस, सभ्य, सुख-खान, सनातन, सबका आश्रय-दाता
सत्य ज्ञान मानवता का जग को सन्देश सुनाता
आदि निवासी हम इसके यह पालक, भाग्य-विधाता
इसीलिये हर वृद्ध, तरुण, बालक को पद ये भाता
हमें भारत देश अति प्यारा है।।
छै ऋतुएँ अनुकूल, भूमि तत्नादि अन्न उपजाती
गंगा, यमुन, सरयू, कृष्णादिक निर्मल नीर बहाती
विमल गगन से रवि किरणावलि स्वर्णिम राशि लुटाती
कोयल कुहुक-कुहुक, भ्रमरावलि गुन-गुन कर यह गाती
हमें भारत देश अति प्यारा है।।
इसके हित राणा प्रताप ने, धूल जगत की छानी
खूब लड़ी थी अँगरेजों से झाँसीवाली रानी
गए लाजपत, तिलक आदि-से कितने काले पानी
जन्म-भूमि से बिदा हुए तब बोले ये मृदु बानी
हमें भारत देश अति प्यारा है।।
इसके हित माताओं ने गोदी के लाल लुटाए
सुहागिनों ने हिय कठोर कर, पति बलिदान कराए
कितने दिन भूखे रहकर, जतीन्द्र ने प्राण गँवाए
चढ़े भगत बिस्मिल फाँसी पर, हँसकर शब्द सुनाए
हमें भारत देश अति प्यारा है।
दयानन्द ऋषि ने इसके हित पिये ज़हर के प्याले
गांधीजी ने प्राण विसर्जन इस पर ही कर डाले
सहे इसी के हित सुभाष ने अगणित विपद कसाले
तज कर देश, विदेश गए मुख से यह शब्द निकाले
हमें भारत देश अति प्यारा है।
देशभक्ति का पीकर प्याला चले वीर मरदाने
दुश्मन की तोपों के आगे अपने सीने ताने
हुए निछावर स्वदेश पर ज्यों दीपक पर परवाने
जब तक तन में प्राण रहे बस गाए यही तराने
हमें भारत देश अति प्यारा है।।
भारत है सर्वस्व हमारा इसका भला चहेंगे
हो निशंक अग्नि में दहेंगे, सागर बीच बहेंगे
मरते दम भी हम 'प्रकाश' मुख से ये शब्द कहेंगे
हमें भारत देश अति प्यारा है।।

प्रथम समुल्लासः

नीरज विद्यार्थी

ईश्वर के ओङ्कारादि नामों की व्याख्या

- क्या ओ३म् परमात्मा का सर्वोत्तम नाम है?
- क्या परमात्मा एक है और उसके गुण-कर्म स्वभावानुसार नाम अनेक हैं?
- परमेश्वर की स्तुति, उपासना, प्रार्थना क्यों करनी चाहिए? क्या ब्रह्मा, विष्णु, महादेव नामक पूर्वज परमेश्वर की ही उपासना करते थे?
- क्या परमात्मा किसी का शत्रु है?
- प्राणी और अप्राणी-जगत् सृष्टि में किस प्रकार चलायमान हैं?
- ग्रन्थारम्भ में आर्षग्रन्थों में 'ओ३म्' तथा 'अथ' शब्द का प्रयोग क्यों किया जाता है?
- सजातीय, विजातीय एवं स्वगत आदि में क्या भेद है?

द्वितीय समुल्लासः

सन्तानों की शिक्षा

- माता, पिता, आचार्य प्रथम तीन शिक्षक क्यों कहे गये हैं?
- माता-सन्तान का निर्माण करने में प्रमुख भूमिका क्यों निभाती है?
- सन्तान की जन्म से लेकर विद्यालय भेजने तक की शिक्षा किस प्रकार की हो?
- पाँच वर्ष तक पुत्र और पुत्री को किस प्रकार की शिक्षा दें?
- सुसभ्य, सुसंस्कृत, पराक्रमी, दीर्घायु सन्तान किस प्रकार बन सकती है?
- सन्तानों को माता, पिता, गुरु, आचार्य, अतिथि, विद्वान्, राजा, रिश्तेदारों से किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए?
- सन्तानों को किस प्रकार की शिक्षा दें कि वे किसी धूर्त्त के बहकावे में न आएँ?
- औषध का प्रयोग कब किया जाता है?
- क्या जन्मपत्र शोकपत्र है?
- ग्रह आदि जड़ जगत् से हमारे मानवीय जीवन को सुख-दुःख क्यों नहीं लगते?
- ज्योतिषविज्ञान कहाँ तक सत्य है?
- नमस्ते ही का प्रयोग हमें करना चाहिए?
- सन्तानों को लाड़न के साथ-साथ ताड़ते रहना क्यों उचित है?
- सन्तानों का यज्ञोपवीत संस्कार कब कराना चाहिए?
- कैसे ब्रह्मचर्य के माध्यम से आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़कर सुख की प्राप्ति होती है?
- मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र का आपसी सम्बन्ध क्यों है?
- ग्रह, नक्षत्र, जन्मपत्र, राशि, मुहूर्त आदि से क्या कुछ होता है?
- बुद्धिनाशक मादक द्रव्य शरीर को किस प्रकार हानि पहुँचाते हैं?
- पाँच बोतल मद्य, पाँच मुर्गी, पाँच बकरे, मिठाई और वस्त्र के स्थान पर पाँच जूते, डण्डे, थप्पड़, लातें कब मारें कि जिससे भूत-प्रेत और शीतला, हनुमान्, देवी, भैरव आदि खुश होकर भाग जाएँ?
- बच्चों की स्मरण - शक्ति में वृद्धि किस प्रकार हो सकती है अर्थात् वेदमन्त्र कण्ठस्थ करने के क्या नियम है?
- अपनी सन्तानों को शिक्षा व विद्या प्राप्त न करानेवाले माता-पिता राजकीय प्रणाली के अन्तर्गत दण्डनीय कब और क्यों होने चाहिएँ?
- खाना, पीना, सोना, लेटना, बैठना आदि के नियम क्या हैं?
- चोरी, जारी, मिथ्या भाषणादि कर्म मृत्यु तक पीछा क्यों नहीं छोड़ते?

❒❒❒

बुजुर्गों ने दी समाज को 'पर्यावरण की सीख'

मुंबई के उपनगर सांताक्रूज में प्राकृतिक वायु पर आधारित अनोखा शवदाह गृह बनाया गया है। देश में यह अपने किस्म का पहला प्रयोग है। हिंदुओं के अलावा कैथलिक, ईसाई और पारसी भी अब इसे स्वीकार कर रहे हैं, ताकि पर्यावरण की रक्षा हो। समय के साथ बदलने की यह सीख सांताक्रूज के बुजुर्गो ने पूरे देश को दी है।

''मनीषा म्हैसकर मैडम ने बताया कि, चूंकि आपके प्रस्ताव में एक ही वायु भट्टी का प्रस्ताव है इसलिए यह पास नहीं हो पाएगा हमने उनके सामने अपनी समस्या रखी कि, हमें केवल तीन हजार वर्गफुट ही जगह दी गई है। ऐसी स्थिति में हम दो वायु भट्टियां कहा से बना पाएंगे? उन्होंने उसी समय अपने इंजीनियरों को बुलाया तथा कहा कि, इनके प्रस्ताव पर आबंटित भूमि को बढ़ाकर पांच हजार वर्गफुट किया जाए तथा उस स्थान पर जाकर इनके लिए सारी व्यवस्था की जाए। जब हम अंतिम योजना लेकर पास गए तो उन्होंने स्वयं आयुक्त के पास जाकर सारी कागजी कार्यवाही पूरी की। हमारी संस्था द्वारा मृत व्यक्ति के परिवार को एक पौधा नि:शुल्क दिया जाता है, जिसे उनके द्वारा योग्य स्थान पर लगाकर उनके द्वारा उस वृक्ष पर समुचित ध्यान दिए जाने की अपेक्षा रखते है। पारंपरिक तरीके से शव जलाने पर सामान्यत: पंद्रह से बीस किलोग्राम तक राख और अस्थियां निकलती है जो कि अधजली अवस्था में होती है जबकि इस पद्धति मे मात्र सवा किलो राखमय अस्थिया निकलती है जो पर्यावरण को नुकसान नहीं पहुंचाएगी' यह वशदाहगृह १४००१ २०१५ के अतर्गत पंजीकृत है।

यह प्रकल्प जिस इलाके में कार्य कर रहा है, वह मुंबई के उपनगरीय क्षेत्र में काफी धनाढ्य माना जाता है। अत: यहां पर बहुत सारे शवों पर कीमती शालें भी डालकर लाई जाती है। क्रियाकर्म के बाद लोग उन्हें छोड़ जाते है। संस्था के लोग उन शालों को धोकर रख लेते है ताकि ठंड के मौसम में उनका उपयोग गरीब लोगों के बीच किया जा सके। सेवानिवृत्ति के बाद के खाली समय के सार्थक व समुचित उपयोग हेतु देश के तमाम हिस्सो मे बनाई गई 'वरिष्ठ नागरिक संस्थाओं' की ही भांति मुम्बई के सांताक्रूज उपनगर में बने सीनियर सिटिजन सांताक्रूज (पश्चिम) संस्था के सदस्यों ने आपस में विचार किया कि चूकि अकेले सांताक्रूज (पश्चिम) स्थित श्मशान में शवों के दाह संस्कार के लिए ही हर साल १८०० से अधिक पेड़ो की कटाई हो जाती है जबकि राष्ट्रीय स्तर पर यह आंकड़ा और भयानक स्तर पार कर ८० लाख हो जाता है। तत्कालीन बृहन्मुंबई अधिकारयों के सामने वे सब एक लिखित प्रस्ताव लेकर गए कि क्यो न सांताक्रूज (पश्चिम) के लिंक रोड और दत्तात्रेय रोड के किनारे पर स्थित हिंदू श्मशान भूमि में 'वाहिनी युक्त प्राकृतिक वायु' की व्यवस्था की जाए ताकि उस इलाके में वायू प्रदूषण की मात्रा नगण्य की जा सके तथा बिजली की भी बचत की जा सके।

यह पूरा प्रकल्प लगभग साढे तीन करोड का है तथा पांच हजर वर्ग फुट में फैला हुआ है जबकि इसकी ऊंचाई १८ फुट है। इसमें दाह कार्य के लिए वाहिनी युक्त प्राकृतिक वायु की दो भट्टियां बनी हुई है तथा १७० लोगों के बैठने के योग्य 'मातोश्री कुमुदवेन न्यालचंद वोरा (मोरबी निवास) शांति स्थल' हॉल भी बनवाया गया है। आधुनिक तकनीकियों से सवक लेते हुए आडियो सिस्टम, वाइफाड सिस्टम, सीसीटीवी कैमरे, और वीडियो रिकार्डिंग की व्यवस्था भी की गई है ताकि मृतक के वे संबंधी जो शहर अथवा देश के बाहर होने के कारण दाह संस्कार में भाग न ले पाए हों वे भी सारी प्रक्रियाएं देख सके।

इतना ही नहीं, यहां पर अस्थियों को रखने की जगह, वातानुकूलित शवपेटी और फोल्डिंग स्ट्रेचर की व्यवस्था भी की गई है। २३ अक्टूबर २०१६ को महाराष्ट्र के माननीय राज्यपाल श्री. विद्यासागर राव के हाथो उद्घाटित इस प्रकल्प ने ठीक २३ दिन बाद १४ नवम्बर को कार्य करना भी शुरू कर दिया था। यह पूरी प्रक्रिया भरतभाई शाह, नगिनभाई शाह (पूर्व मंच संचालक) जैसे प्रखर समाज प्रहरियों की मेहनत का परिणाम है, साथ ही बृहन्मुबई महानगरपालिका के अधिकारी भी धन्यवाद के पात्र हैं कि उन्होंने इस तरह की उच्च व नवीन प्रणाली पर भरोसा जताया। इतना ही नही, सुबह ८ बजे से लेकर शाम ८ बजे तक मोक्षवाहिनी द्वारा बांद्रा (पश्चिम) और अंधेरी (पश्चिम) के मध्ये के नागरिकों के शवों को लाने के लिए शि:शुल्क सेवा भी शुरू की गई और उन क्षेत्रों के मध्य शालो का वितरण फुटपाथ पर रहने वाले गरीब लोगों के बीच कर चुकी है। सबसे बडी बात है कि किसी कार्यक्रम का आयोजन किए बिना ही रात में फुटपाथ पर सो रहे बेघरों के ऊपर चुपके से शाल ओढ़ा कर यह सारा शाल वितरण किया जाता है। यहां पर बहुत ज्यादा मात्रा में निर्माल्य भी निकलता है, जिसे परिष्कृत कर खाद बनाकर उपयोग लाने का कार्य भी किया जाता है। अर्थात यहा पर हर संभव प्रयास क्रिया जाता है कि दाह क्रिया को कितना अधिक से अधिक प्रदूषण रहित बनाया जाए! ऊंची चिमनियों से निकलने वाले गंधहीन, रंगहीन और थोडी मात्रा में निकलने वाला धुआं इसका बेहतरीन उदाहरण है।

अब तक लगभग १५ कैथलिक ईसाइयों के दाह संस्कार भी किए जा चुके है। पिछले एक वर्ष में इस पद्धति द्वारा यहां पर अब तक लगभग ६७० शवों का अंतिम संस्कार किया जा चुका है।

यहां के कर्ताधर्ताओं ने आर्य समाजियों के बीच भी अपनी बात रखी, ताकि वे भी अपने नियमों को ढ़ील दे शवदान कर सके तथा वारकरी समुदाय के लोगों से अपील की है कि वे अपने परंभरागत अभंगो के माध्यम से लोगों को इसके बारे में जागरूक करें ताकि लोग पर्यावरण की रक्षा के प्रति सजग हो तया ज्यादा से ज्यादा स्थानों पर इस तरह की व्यवस्था की जा सके। किसी के घर पर मृत्यु होने की दशा में उन्हें इस शवदाह गृह में नि: शुल्क दाह संस्कार के प्रति प्रेरित भी किया जाता है तथा लोगो के बीच अंगदान जैसे पनीत कार्य के प्रति भी जागरुकता फैलाई जाती है, यह पहल हमारे समाज के लिए अति अनुकरणीय है का भारत प्रदूषण मुक्त होने की दिशा में सार्थक कदम बढ़ा सके।

और आखिर में चलते-चलते, कुछ दिनों पूर्व ही वालीवुड के मेगास्टार स्व शशिकपूर तथा लोकप्रिय गुजराती व हिंदी फिल्म अभिनेता नीरज वोरा का अंतिम संस्कार भी इसी श्मशान भूमि में वायु वाहिनी द्वारा ही किया गया था जो कि एक अनुकरणीय पहल है।

सीनियर सिटिजन, सांताक्रूज (पश्चिम) संस्था हिंदू श्मशान भूमि, लिंक रोड एक्स्टेंन्शन, सांताक्रूज (प.), मुंबई-५४.
Ph: 022 26603134 Mob.: 82862 05065
web:www.ecomoksha.org
Email:pngc54gmail.com

क्या ईश्वर, जीव, प्रकृति का पृथक्त्व जाने बिना कोई योगी बन सकता है?

स्वामी सत्यपति परिव्राजक

इस वर्तमान युग में योग के विषय में अनेक भ्रान्त धारणाएँ प्रचलित हो चुकी हैं और उनकी प्रवृद्धि होती चली जा रही है। इन मिथ्या धारणाओं के कारण ही मनुष्य-जाति दुःखसागर में डूबती चली जा रही है। यदि इन अज्ञान और स्वार्थ से कल्पित विचारों को न रोका गया तो और भी अज्ञानता की वृद्धि होगी और उसका परिणाम होगा प्राणिमात्र को महान् दुःख की प्राप्ति। योग के स्वरूप को जानने के लिए मैं लगभग ३५ (पैंतीस) वर्षों से प्रयत्नशील हूँ और योगानुष्ठान से मुझे महान् लाभ हुआ है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इतने समय में मैंने जो योग के विषय में अनुभव किया और वेदादि शास्त्रों के अध्ययन से जो जाना, उसको सबके हितार्थ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

इस लेख का उद्देश्य सत्यासत्य को जानना व जनाना है, पक्षपात से किसी का खण्डन करना नहीं। योग के जिज्ञासु और शिक्षक श्रद्धापूर्वक पक्षपातरहित होकर इस लेख को पढ़ेंगे तो निश्चितरूपेण महान् लाभ होगा।

प्रश्न-कुछ लोग कहते हैं, चाहे कोई ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीनों को अनादि माने, चाहे कोई जीव और प्रकृति को अनादि माने, चाहे केवल प्रकृति को अनादि माने परन्तु योगी सभी बन सकते हैं। इन मान्यताओं का योग से कोई सम्बन्ध नहीं है।

उत्तर- सच्चा योगी केवल ईश्वर, जीव और प्रकृति को अनादि मानने वाला ही बन सकता है, अन्य नहीं और जो लोग यह कहते हैं कि योग के साथ इन मान्यताओं का कोई सम्बन्ध नहीं, वे अज्ञानान्धकार में पड़े हैं। त्रैतवाद से भिन्न मान्यताओं को मानने वाले कभी भी योगी नहीं बन सकते क्योंकि ऐसा मानना प्रमाण और युक्ति के विरूद्ध है। योग के वास्तविक स्वरूप को दर्शाने वाले योगदर्शन में ईश्वर, जीव और प्रकृति इन तीनों को भिन्न-भिन्न स्वीकार किया है। "**क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर**" (योग. १।२४) इस सूत्र में '**पुरुषविशेष ईश्वर**' कथन से स्पष्टतः ईश्वर और जीव की भिन्नता सिद्ध है कि सामान्य पुरुष जीव है और पुरुषविशेष ईश्वर है।

योगदर्शन के भाष्यकार व्यास जी इसी (१।२४) सूत्र के अवतरण में लिखते हैं कि- "**अथ प्रधानपुरुषव्यतिरिक्तः कोऽयमीश्वरो नामेति**"? अब प्रकृति और पुरुष से अतिरिक्त कौन यह ईश्वर है। इस व्यास जी के वाक्य से भी ईश्वर, जीव और प्रकृति की भिन्नता सिद्ध होती है। "**प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मक भोगापवर्गार्थं दृश्यम्**" (योग. २। १८) इस सूत्र में ईश्वर और जीव से भिन्न जो प्रकृति है, उसको जीव के भोग और मोक्ष के लिए बतलाया है। **द्रष्टा दृशिमात्रः शद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः** (यो. २। २०) इस सूत्र में जीव को ईश्वर और प्रकृति से भिन्न दर्शाया है। क्योंकि सूत्रकार ईश्वर और प्रकृति को पूर्व के सूत्रों में बतला चुके हैं, अतः इस सूत्र में जीव के स्वरूप का वर्णन है।

और वेदान्तदर्शन में भी त्रैतवाद को स्वीकार किया है यथा- **अथातो ब्रह्मजिज्ञासा** (वे. १।१) इस सूत्र में ब्रह्म को जानने की जिज्ञासा का उपदेश है। यदि ब्रह्म से अतिरिक्त कोई वस्तु है ही नहीं तो ब्रह्म के जानने के लिए जिज्ञासा कौन करेगा? **जन्माद्यस्य यतः** (वे. १।२) जिससे इस जगत् का जन्म, स्थिति और प्रलय होता है, वही ब्रह्म जानने योग्य है।

इन सूत्रों से नितान्त यह बात सिद्ध है कि ईश्वर, जीव और प्रकृति ये तीनों भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं। इन सूत्रों में स्पष्ट वर्णन है कि एक जिज्ञासा करने वाला है और उससे भिन्न की वह जिज्ञासा करता है। जो कि प्रकृति से संसार को बनाता, चलाता एवं बिगाड़ता है। अतः केवल ब्रह्म को अनादि मानने वाले कभी योगी नहीं बन सकते।

एक महान् योगी स्वामी दयानन्द सरस्वती जी भी ईश्वर, जीव और प्रकृति को तीनों कालों में भिन्न मानते हैं। सत्यार्थ प्रकाश ८ समु. में "**द्वा सुपर्णा सयुजा.**" (ऋग्. मं.१। सू. १६४। मं. २०) से स्वामी जी महाराज ने ईश्वर, जीव और प्रकृति को अनादि सिद्ध किया है। जो लोग स्वामी दयानन्द सरस्वती जी को योगी नहीं मानते वे अनभिज्ञ हैं। क्योंकि उनके ग्रन्थों के अध्ययन और उनके जीवन-काल के व्यवहार से यह सिद्ध होता हे कि वे महान् योगी थे। अतः योग के विषय में उनका सिद्धान्त स्वीकार्य है।

युक्ति से भी यह बात सिद्ध है कि त्रैतवाद को मानने वाला ही योगी बन सकता है। यदि केवल ब्रह्म को ही आनादि माना जाय तो योगाभ्यास करके योगी बनने की क्या आवश्यकता है? क्योंकि वह तो स्वयं सच्चिदानन्द है। उसको किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। जो लोग ईश्वर और प्रकृति को अनादि मानते हैं उनकी मान्यता के अनुसार भी योगी बनने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रकृति जड़ है। वह योगाभ्यास कैसे करेगी, और जड़ होने से उसको आवश्यकता भी नहीं है। इसी प्रकार जो लोग केवल प्रकृति को अनादि मानते हैं उनके मतानुसार भी योगी बनने की आवश्यकता नहीं है। और जो लोग जीव और प्रकृति को अनादि मानते हैं उनके मतानुसार भी कोई योगी नहीं बन सकता। क्योंकि जब कोई ईश्वर नाम का पदार्थ ही नहीं हे तो योगाभ्यास से जीव किस को प्रत्यक्ष करेगा? यदि यह मान लिया जाय कि जीव योगाभ्यास से स्वयं ईश्वर बन जाता है तो यह प्रश्न उठता है कि योगाभ्यास करने से ईश्वर बनने का सामर्थ्य कहाँ से आयेगा, और योगाभ्यास से ईश्वर बनने से पूर्व जीव बन्धन में क्यों आया? इसी प्रकार से संसार के अन्दर जितने भी वाद है उनमें केवल त्रैतवाद ही ऐसा है जिसके अनुसार चलने से ही मनुष्य सच्चा योगी बन सकता है, अन्य किसी वाद के अनुसार नहीं। अतः योग के जिज्ञासु और शिक्षक त्रैतवाद को अवश्य स्वीकार कर योगाभ्यास करें-करावें। अन्यता स्वयं दुःख-सागर में गोते लगावेंगे। और जो उनकी बातको मानकर योगाभ्यास करेंगे वे भी अपने

मनुष्य-जीवन को व्यर्थ खो बैठेंगे।

एक प्रसिद्ध योगी कहलाने वाले स्वामी जी से भेंट– एक दिन की बात है कि एक महान योगी माने जाने वाले, जो अनेक देशों में भी योग-प्रशिक्षण के लिये जा चुके हैं, उनके साथ मेरा वार्तालाप हुआ। उस वार्तालाप के समय जिन विषयों पर शंका-समाधान हुआ उनमें से कुछ बातों को सर्व-हितार्थ प्रस्तुत करता हूँ।

प्रश्न– आप वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं वा नहीं?

उत्तर– (स्वामी जी का) मैं वेद को ईश्वरीय ज्ञान नहीं मानता। वह तो ऋषियों के हृदय की उपज है।

प्रश्न– आप जीव की सत्ता को ईश्वर और प्रकृति से भिन्न मानते हैं वा नही?

उत्तर– मैं जीव की सत्ता को ईश्वर और प्रकृति से भिन्न नहीं मानता।

प्रश्न– मनु आदि ऋषियों ने तो जीव की सत्ता को ईश्वर आदि से भिन्न स्वीकार किया है

उत्तर– उनकी मान्यता कुछ भी हो परन्तु मेरी मान्यता यह है कि जीव की कोई सत्ता नहीं है।

प्रश्न– ईश्वर में कोई गुण है वा नहीं?

उत्तर– ईश्वर में कोई गुण है वा नहीं है, और स्वामी दयानन्द जी ने ईश्वर को सगुण-निर्गुण दोनों प्रकार का माना है, वह ठीक नहीं है।

प्रश्न– आपकी इन मान्यताओं में प्रमाण क्या है?

उत्तर– प्रमाण कोई नहीं है। केवल मैं ऐसा ही मानता हूँ।

(जब-जब भी कोई प्रमाण पूछा जाता था तब-तब स्वामी जी यही उत्तर प्राय: देते थे कि **"मैं ऐसा मानता हूँ"**। इसी अवसर पर स्वामी अग्निदेव जी भीष्म ने यह पूछ लिया कि स्वामीजी! आपने जो पुस्तक लिखी है, उसमें तो तीन सत्ताओं को अनादि माना है। स्वामीजी ने उत्तर दिया कि उस समय मैं तीनों को अनादि मानता था, अब मेरी मान्यता परिवर्तित हो गई है।

प्रश्न– यह भी आपकी मान्यता परिवर्तित हो गई तो?

उत्तर– अब नहीं होगी अर्थात् ईश्वर और प्रकृति इन दो को अनादि मानता हूँ, जीव की सत्ता को नहीं मानता। यह मेरी मान्यता अब नहीं बदलेगी।

इस प्रकार से संसार में अनेक प्रसिद्ध योगी बन बैठे हैं, कि मैं ऐसा ही मानता हूँ, और यह मेरा अनुभव है। इस प्रकार बिना प्रमाण और युक्ति के लोग अपनी मान्यताओं को खड़ा करते हैं, उनके कपोल-कल्पित सिद्धान्तो को धराशायी करने के लिए सांख्य के रचयिता कपिल मुनि जी ने कहा है कि- **नायौक्तिकस्य संग्रहोऽन्यथा बालोन्मत्तादिसमत्त्वम्** (सां. १।२६) अर्थात् युक्ति-विरूद्ध बात भी मानी जाय तो अज्ञानी और उन्मतों की बात भी मान लेनी चाहिये। अत: प्रमाण-युक्ति-शून्य केवल अपनी कल्पनाओं से मान्यताओं की स्थापना करने वाले योगी कदापि नहीं हो सकते। इसलिए ईश्वर, जीव और प्रकृति के वास्तविक स्वरूप को जानने, मानने तथा तदनुसार आचरण करने वाला व्यक्ति ही योगी बन सकता है, अन्य नहीं।

❒❒❒

आर्यत्व के धनी–महाशय धर्मपाल जी

जो मानव संसार में, करते अच्छे काम।
वे कर जाते हैं अमर, जग में अपना नाम।।
जग में अपना नाम, धन्य है उनका जीवन।
गाते हैं यशगान, रात-दिन उनका सज्जन।।
जीवन में उत्थान, आर्य जन कर जाते हैं।
बड़भागी गुणवान, मान जग में पाते हैं।।१।।

महाशय धर्मपाल जी, ईश्वर भक्त महान।
आर्य केन्द्रीय सभा के, हैं नेता प्रधान।।
हैं नेता प्रधान, वेद मर्यादा पालक।
दानवीर गुणवान, संत है नेता लायक।।
धर्मवीर विद्वान, यशस्वी, परोपकारी।
परमार्थ के काम, रात-दिन करते भारी ।।२।।

धर्म के रक्षाक हैं बड़े, भारत की हैं शान।
प्यारे आर्य समाज को, इन पर है अभिमान।।
इन पर है अभिमान, गरीबों के हितकारी।
मानवता क पुंज, इन्हें है दुनियां प्यारी।।
साहस के हैं धनी, कभी भी ना घबराते।
इनके आगे दुष्ट, कुचाली ठहर न पाते।।३।।

ईश्वर से है यह विनय, दया करो भगवान।
धर्मपाल जी को करो, दीर्घायु प्रदान।
दीर्घ आयु प्रदान करो, ये करें भलाई।
वैदिक पथ पर चलें, निरंतर ये बलदायी।
दुखियों दीन अनाथ जनों के, सबल सहारे।
रहें सुखी सानन्द, महाशय नेता प्यारे।।४।।

सुनो आर्यो ध्यान से, कहूं जोड़ कर हाथ।
महाशय जी का दीजिए, मिलकर पूरा साथ।।
मिलकर पूरा साथ, वेद प्रचार करो तुम।
व्याकुल है संसार, जगत की पीर हरो तुम।।
जीवन है अनमोल, इसे तुम सफल बनाओ।
'नन्दलाल' कुछ काम भलाई के कर जाओ।।

–पं. नन्दलाल निर्भय 'सिद्धान्ताचार्य'
ग्राम वहीन, पलवल, मो. ९८१३८४५७७४

महर्षि दयानन्द और महात्मा अमींचन्द

आचार्य ब्र. नन्दकिशोर

पं. चमूपति जी एम.ए. हिन्दी, उर्दू के सर्वमान्य कवि थे उन्होंने स्व. अमींचन्द के भजनों और कविताओं का संग्रह 'अमीसर सार' नाम से पुस्तकाकार में छपाया था। वे अमींचन्द के विषय में परिचय देते हुए लिखते हैं कि अमींचन्द का जन्मस्थान हरणपुर था, जो जेहलम जिले की तहसील 'पिण्ड दादन खाँ' में एक छोटा-सा ग्राम है। इनका वंश 'बाली' था-यह मोहयाल ब्राह्मणों के अन्तर्गत एक विख्यात उपजाति है।

अमींचन्द को गायन का अनुराग बाल्यकाल से था। कदाचित् इसी कारण से इनका संग मीरासियों और वेश्याओं से हो गया। यह गानविद्या पर दैव का अत्याचार है कि यह विद्या दुराचारियों के हाथ जा पड़ी है। अमींचन्द गान-रस का रसिया! यही रस उसे दुराचारियों में ले गया और उनमें ऐसा फंसाया कि वहीं तन्मय कर दिया। मांस खाता, मद पीता और दिन-रात दुर्व्यसनियों की कुसंगति में रहता। अपने समय के मुन्शियों की भांति अमींचन्द उर्दू पढ़ा था। जेहलम तहसील में वासिल बाकी नवीस हो गया। बीस-बाईस वर्ष की निरन्तर कर्मचारिता के पश्चात् चुंगी का दरोगा बना और स्थानापन्न नायब तहसीलदार भी नियत किया जाने लगा। कुछ गड़बड़ी के कारण इन पर अभियोग चला और नौकरी से हाथ धोना पड़ा।

कहते हैं एक डॉक्टर महाशय अमींचन्द को गुजरात ले गए। वहाँ उसे ऋषि दयानन्द के दर्शन हुए। ऋषि के सामने अमींचन्द ने भजन गाया। ऋषि बोले उठे- ''है तो हीरा, परन्तु कीचड़ में पड़ा है।'' इतने ही से आंख खुल गई और जो दुर्व्यसनी अमींचन्द था, वही राग-विद्या-व्यसनी सचमुच 'अमींचन्द' हो गया और जहाँ-तहाँ अमीं-रस की वृष्टि करने लगा। ऋषि के मुख से निकले अमृत-वचनों से, अमींचन्द की काया पलट गई। जो अनुराग उसे पहले विषय-भोग में था, वह अब ईश्वरभक्ति में हो गया।

तोप के मुंह पर

फर्रुखाबाद में महाराज एक परमात्मा की उपासना का प्रचार कर रहे थे। एक पादरी लूकस ने स्वामी जी से कहा- 'क्यों बाबा! आपको तोप के मुंह पर रखकर आप से कहा जाये कि यदि तुम मूर्ति को मस्तक नहीं नवाओगे, तो तुम्हें तोप से उड़ा दिया जायेगा। तो आप क्या कहेंगे?' स्वामी जी ने कहा- ''मैं यही कहूँगा कि मुझे उड़ा दो। परन्तु दयानन्द का मस्तक केवल एक परमात्मा ही के सामने झुक सकता है और किसी के सामने नहीं''

रोटी नाई की या गेहूँ की?

एक दिन एक नाई अपने घर से महाराज के लिए भोजन बनवा कर लाया। और स्वामी जी से प्रार्थना की कि आज तो मेरी भिक्षा स्वीकार कीजिये। महाराज ने उसे सहर्ष स्वीकार किया। उपस्थित लोगों ने कहा- 'महाराज! यह तो नाई की रोटी है।' परन्तु महाराज मुस्कराये, और कहा-यह नाई की रोटी तो नहीं, गेहूँ की रोटी है।' और फिर बड़े प्रेम से रोटी खा गये।

स्त्रियों के मुख्य धर्म

महाराज भड़ोंच में अमृत-वर्षा कर रहे थे तो एक दिन बहुत से भार्गव ब्राह्मण और स्त्रियां स्वामी जी का उपदेश सुनने के लिए आये। स्त्रियों में अधिक संख्या अद्वैतानन्द की चेलियों की थी। स्वामी जी स्त्रियों से वार्तालाप नहीं करना चाहते थे। किन्तु उनके विशेष आग्रह और अनुरोध पर एक पर्दा उनके और अपने बीच डालकर उन्हें यह उपदेश दिया- 'पति-सेवा करना ही तुम्हारा धर्म है, और पतियों से ही उपदेश लेना तुम्हारा कर्त्तव्य है। मन्दिरों आदि स्थानों में आना-जाना, और साधु संन्यासियों के दर्शनों के लिए इधर-उधर घूमना स्त्रीजाति के लिए अत्यन्त अनुचित है। स्त्रीजाति का मुख्य धर्म पति-सेवा और उत्तम रीति से सन्तति का पालन-पोषण ही है।'

लाहौर में एक दिन कुछ स्त्रियां महाराज के दर्शन के लिए आयीं। और पूछा- 'ज्ञान और शान्ति कैसे मिले?' महाराज ने उत्तर दिया- 'तुम्हारे पति ही तुम्हारे गुरु हैं। उन्हीं की सेवा करो, किसी साधु को गुरु मत बनाओ। विद्या पढ़ो, और अपने पति को हमारे पास भेजा करो। उनके द्वारा हमारे उपदेश से लाभ उठाया करो।'

असत्य पर कदापि नहीं

बम्बई में जब आर्यसमाज स्थापित हुआ तो राजकृष्ण महाराज ने आर्यसमाज के नियम बनाने की इच्छा प्रकट की। स्वामी जी ने कहा कि नियम हम स्वयं बनायेंगे और एक नियमावली बना दी। राजकृष्ण महाराज ने कहा- 'नियमों में जीव - ब्रह्म के एकत्व के सिद्धान्त का समावेश होना चाहिए, पीछे से उसे छोड़ देंगे। ऐसा करने से अनेक लोग आर्यसमाज में आ जायेंगे।'

स्वामी जी ने कहा- 'मैं आर्यसमाज को असत्य पर कदापि स्थापित नहीं करूँगा।' इस पर राजकृष्ण महाराज स्वामी जी के शत्रु बन गये। किन्तु स्वामी जी ने उनकी कोई चिन्ता नहीं की।

कोई नया मत नहीं

महाराज अपना कोई नया मत नहीं चलाना चाहते थे, अपितु वेदादि सत्यशास्त्र और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि पर्यन्त के माने हुए सिद्धान्तों ही को वे मानते थे। और उन्हीं पर चलने का सब को उपदेश देते थे। 'स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश' में लिखते हैं- मेरा कोई नवीन कल्पना वा मतमतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है। किन्तु जो सत्य है उसको मानना-मनवाना, और जो असत्य है, उसको छोड़ना-छुड़वाना मुझ को अभीष्ट है।

❒❒❒

पूना का दूसरा प्रवचन

(मंगलवार ६ जोलाई १८७५* के दिन, श्री. १०८ दयानन्द सरस्वतीजी के ईश्वर विषयक व्याख्यान पर हुए वाद-विवाद का सारांश)

१ प्रश्न– कार्य और कारण भिन्न-भिन्न है या किस प्रकार?

उत्तर– कन्हीं-कहीं अभिन्न है और कहीं-कहीं भिन्न भी हैं। उदाहरण- मृत्तिका से बना हुआ घट मुत्तिका ही रहता है, परन्तु मांस-शोणित से नख उत्पन्न होते है तथापि मांस और शोणित ये नख नहीं। इसी प्रकार मकड़ी के पेट से जाला उत्पन्न होता है, परन्तु इससे मकड़ी जाला नहीं होती।

गोमयाजायते वृश्चिक:

(अर्थात्-गोवर से बिच्छू उत्पन्न होता है। तो भी गोबर और विच्छू क्या कभी एक हो सकते है? सर्वशक्तिमत्त्व चैतन्य में (और) चैतन्य पर सर्वशक्तित्व है अर्थात् सामर्थ्य के योग से चैतन्य निमित्त कारण होता है। इस स्थल पर जड़-पदार्थ जो विश्व का उपादान कारण है वह और निमित्त कारण चैतन्य एक नहीं है। अब-

एकमेवाद्वितीयम्

ऐसी श्रुति है। उसका धर्म करने में इस उपयुक्त व्यवस्था से कुछ आपत्ति नहीं आती। कारण, (इसका अर्थ) अद्वितीय अर्थांत् ईश्वर ही उपादान हुआ ऐसा नहीं है। कारण, भेद तीन प्रकार का होता है। कभी-कभी स्वजातीय भेद रहता है तो कभी-कभी विजातीय और कभी स्वगत भेद होता है। अब 'आद्वितीय है' अर्थात् 'सब जो कुछ है वह ईश्वर ही है' ऐसा अर्थ आधुनिक वेदान्त में लेते हैं। परन्तु यह अर्थ उपयोगी (=ठीक) नहीं, किन्तु अद्वितीय का अर्थ दूसरा ईश्वर नहीं, अर्थात् एक ही ईश्वर है और वह संयुक्त नहीं है, यही अर्थ है। अब-

ईश्वर: सर्वसृष्टि प्राविशत्।

ऐसे अर्थ की श्रुति है, तो अब उसका अर्थ किस प्रकार करना चाहिए? अथवा-

सर्व खल्विदं ब्रह्म।

इस वाक्य का अर्थ कैसे करें? आधुनिक वेदान्ती 'इदं विश्व' ऐसा मान-कर उस शब्द का अर्थ 'सर्व' सबकी और करते हैं, परन्तु साहचर्य अर्थात् ग्रन्थ के अगले-पिछले अभिप्राय की ओर दृष्टि देने से 'इदं' शब्द का अन्वय 'ब्रह्म' शब्द की ओर करना पड़ता है (जैसे) **''इदं सर्व धृतम्''** अर्थात् यह बिल्कुल घी है, तेल मिश्रित नहीं, ऐसा सर्व शब्द का अर्थ है। ऐसा अर्थ करने से ऊपर के हमारे कहे अनुसार श्रुतिका अर्थ होने से (कोई) कठिनाई नहीं रहती।

''नाना वस्तु ब्रह्मणि'' अथवा बृहदारण्यकोपनिषद् में **''आत्मनि तिष्ठन् आ (स्मनोऽन्तरो यमा) त्मा न वेद''** अथवा **''यस्य आत्मा शरीरम्''** इस वाक्य के अर्थ के विषय में आपत्ति आयेगी, इसका विचार करना चाहिए। एक ही शरीर के स्थान में व्यापक और व्याप्त इन दोनो धर्मो की योजना नहीं करते बनती। गृह आकाश में स्थित है और आकाश यह व्यापक है, गृह व्याप्त है। इसलिए आकाश और गृह ये एक ही है वा अभिन्न है, ऐसा अनुमान निकालते नहीं आता। इसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा ये अभिन्न है ऐसा कहने का अवकाश नहीं रहता।

अहं ब्रह्मस्मि।

इस वाक्य का अर्थ किया जाय तो यह अत्यन्त प्रीति का (द्योतक) उदाहरण है, यही लौकिक दृष्टान्त पर से स्पष्ट होता है। जैसे 'मेरा मित्र मैं ही हूँ'' ऐसा कहते है, परन्तु मैं और मेरा मित्र, इन दोनों की सर्वथैव अभिन्नता है ऐसा फलितार्थ नहीं होता।

समाधिस्थं होते समय **तत्त्वमसि** ऐसा मुनि लोग कह गए, परन्तु साहचर्य की ओर ध्यान देने से मुनियों का यह भाषण 'जीवात्मा और परमात्मां **अभिन्न है'** इस मत का पोषक नहीं होता, क्योंकि इसी वचन के पूर्व भाग में **इस सारे स्थूल और सूक्ष्म जगत् मे कारण सम्बन्ध से परमात्मा का ऐतदात्म्य** (कथित) है। परमात्मा का आत्मा दूसरा नहीं, **'स आत्मा'** वही आत्मा है **'तदन्तर्यामि त्वमसि'** जो सब अजत् का आत्मा वह तेरा ही है। इसलिए जीवात्मा और परमात्मा इनके बीच परस्पर सेव्य-सेवक, व्याप्य-व्यापक, आधाराधेय ये सम्बन्ध ठीक जमते हैं। ऐतरेयोपनिषद् में-

प्रज्ञान ब्रह्म

ऐसा वाक्य है। उसके महावाक्य-विवरण में-

प्रज्ञानमानन्द ब्रह्म

ऐसा विस्तार किया हुआ है, फिर भी परमेश्वर ही सृष्टि मना, ऐसा अर्थ **''तत् सृष्टि प्राविशत्''** इस वाक्य पर से करने पर कार्य कारण की अभिन्नता होती है। यदि ईश्वर ज्ञानी है तो अविद्या माया आदिकों के आधीन होकर सृष्ट्युत्पत्ति का वारण हुआ, ऐसे कहने में 'उसको भ्रान्ति हुई' ऐसा प्रतिपादन करना पड़ता है। (जहां) देश, काल, वस्तु (का) परिच्छेद है वहां भ्रान्ति है। यही भ्रान्ति ब्रह्म को हुई यह मानने से ब्रह्म का ज्ञान अनित्य ठहरता है (अत:) यह विचारणीय वार्ता है।

इसी तरह 'जीव-भावना' भ्रान्ति का परिणाम है। भ्रान्ति दूर होने से जीव ब्रह्म होता है, ऐसी समझ है तो (यह समझ) ठीक नहीं, क्योंकि भ्रान्ति परमात्मा में संभव नहीं। आधुनिक वेदान्त के अनुसार मुक्ति को स्वीकार करने पर ब्रह्म को अनिर्मोक्ष प्रसंग आता है। जीव और ब्रह्म को यदि एक कहें तो जीव में ब्रह्म के गुण नहीं है, जीव को अपरिमित ज्ञान और सामर्थ्य नहीं। यदि हम ब्रह्म बन जावें तो हम जगत् भी रच लेवें। इस से पुन: एक बार ऐसा कहना आवश्यक हुआ कि विश्व जड़, ब्रह्म चेतन है और इनका आधाराधेय, सेव्य-सेवक, व्याप्त-व्यापक सम्बन्ध है।

''सुखमस्वाप्सम्'' इस अनुभव की योजना की जाती है क्योंकि चैतन्य यह नित्य ज्ञानी है। तैत्तिरीपोपनिषद् में आनन्दमय कोष के अवयव वर्णन किए हुए हैं।

सारांश– जीव ब्रह्म नहीं, जगत् ब्रह्म नहीं। इस स्थल पर कार्य कारण भिन्न-भिन्न है। यही प्रकार सत्य है, परन्तु अखिल सजीव और निर्जीव पदार्थ ईश्वर ने अपने सामर्थ्य से निर्माण किए। वह सामर्थ्य उसी के पास सदा रहता है, इस तात्पर्य से भेद नहीं आता।

२ प्रश्न– तुम कहते ही कि अवतार नहीं हुए, तो ईश्वर को सगुण वा

निगुण क्यों मानते हो?

उत्तर– प्राकृत जनों में सगुण अर्थात् अवतार और निर्गुण अर्थात् परब्रह्म ऐसा अर्थ करके इस सम्बन्ध से वाद चलता है, परन्तु यह अर्थ ठीक नहीं है। ''**स पर्यगात्**'' इस श्रुति पर से अवतार का होना बिल्कुल ही नहीं संभव होता। ''**कविः मनीषी**'' ''**एको देवः निर्गुणश्च**'' ऐसे-ऐसे श्रुति वाक्य हैं, इन से ईश्वर सगुण दोनों है। ज्ञान, शक्ति, आनन्द इन गुणों के सहित होने से वह सगुण है, परन्तु जड़ के गुण उसमें नहीं है। इन गुणों के सम्बन्ध (अभाव) से वह निर्गुण है। प्रथम जो मैने श्रुति कही उसके साहचर्य की ओर ध्यान देने से यह अर्थ निकलता है।

३ प्रश्न– प्रार्थना क्यों करनी चाहिए, ईश्वर सर्वज्ञ है और सर्वशक्तिमान् भी है तो उसे हमारे मन की बात विदित है और उसने हमें इस प्रकार कैसे उत्पन्न किया कि हम पाप करें, फिर इस प्रकार की पाप-विषयिणी प्रवृत्ति हम में रखकर हमारे पाप का दण्ड देता है, ईश्वर न्यायी कैसा?

उत्तर– हमारे माता-पिता ईश्वर के बनाए हुए पदार्थ लेकर हमें पालते है तो भी वे हम पर बड़े उपकार करते हैं। इन उपकारों का स्मरण करना हमारा धर्म है, ऐसा हम स्वीकार करते है। फिर जब ईश्वर ने सृष्टि उत्पन्न की तो उसके असंख्य उपकारों को हमें अवश्य स्मरण करना चाहिए। द्वितीय-कृतज्ञता दिखलानेवाले का मन स्वतः प्रसन्न और शान्त होता है। तृतीय-परमेश्वर की शरण जाने से आत्मा निर्मल होता है। चतुर्थ-प्रार्थना से पश्चात्ताप होता है और आगे को पाप-वासना का बल घटता जाता है। पञ्चम- सत्यता और प्रेम हम में दृढ होते जाते है। षष्ठ- स्तुति अर्थात् यथार्थ वर्णन, ईश्वरस्तुति करने से अपनी प्रीति बढ़ती है क्योंकि ज्यो-ज्यों उसके गुण समझ में आते जाते हैं, त्यो-त्यों प्रीति अधिक दृढ होती जाती है।

फिर यह भी है कि उपासना के द्वारा आत्मा में सुख का प्रादुर्भाव होता है। इस उपाय को छोड़ पापनाशन करने के लिए अन्य उपाय नहीं है। काशी जाने से हमारे पाप दूर होंगे यह समझ, अथवा तोबा करने से पाप छूटना, किंवा हमारे पाप का भार अमुक भद्र पुरूष लेकर सूली चढ़ गया इत्यादि अन्य लोगों की सारी समझ अप्रशस्त है अर्थात् भूल पर है। उपासना के द्वारा विवेक उत्पन्न होता है, विवेकी होने से क्षणिक (नाशवान्) वस्तुओं से शोक और आनन्द ये दोनों नहीं होते। अब ईश्वर ने जीव स्वतन्त्र किया, इस लिए उससे पाप भी होता है, यदि उसे परतन्त्र किया जाता तो वह केवल जड़ पदार्थवत् बना रहता। जीव के स्वातन्त्र्य से ब्रह्म की सर्वज्ञता में कोई बाधा नहीं आती, क्योंकि इन दोनों में परस्पर सम्बन्ध नहीं है। बच्चे को खुला छोड़ा जाय तो वह चोट लगा लेवेगा, यह सोच माता बालक को बांधे नहीं करती। तो भी बालक दंगा, धूम, फसाद अवश्य करेगा, यह ज्ञान माता को रहता ही है। इस लौकिक उदाहरण पर से ब्रह्म की सर्वज्ञता से जीव के स्वातन्त्र्य में कुछ भी आपत्ति नहीं आती। ज्ञान के विषय में स्वतन्त्रता उसकी है, उसी तरह आचरण के विषय में उससे दिए हुए सामर्थ्य की मर्यादा में स्वतन्त्रता मनुष्य की है। यदि ऐसी स्वतन्त्रता न होती तो जो सुखोपभोग आज ही रहा है वह न होता और जीव-सृष्टि की उत्पत्ति व्यर्थ हुई होती।

- उपदेश मंजरी से साभार

❒❒❒

स्वस्तियाग एवं वैदिक सत्संग सम्पन्न

राजौरी गार्डन नई दिल्ली में सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी के ब्रह्मत्व में स्वस्तियाग का आयोजन किया गया। इस यज्ञ के मुख्य यजमान धर्मनिष्ठ श्रीमती सुरेखा चोपड़ा जी एवं आर्यसमाज नारायणा विहार, नई दिल्ली के प्रधान श्री दर्शन लाल कत्याल जी थे। इस अवसर पर आचार्य श्री ने श्रद्धालुओं को संबोधित करते हुए कहा कि यज्ञ समस्त भुवनों की, समस्त सत्ता की, समस्त जगत् की नाभि है। यज्ञ की शक्तियां अनन्त है। यह दीर्घायुष्य प्रदान करने वाला है। अथर्ववेद में मंत्र आता है, यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एंव तमा हरामि निऋतेंरूपस्थाद स्पादर्शमेनं शत शारदाय। जो व्यक्ति मृत्यु के पास पहुंच गया हो, जिसके जीवन की आशाक्षीण हो गई है, वह रोगी भी यज्ञ से रोगमुक्त होकर आरोग्य को प्राप्त करता है। यज्ञोपरान्त शशिप्रभा आर्या जी, एवं श्रीमती देव मदान जी के सुमधुर भजनों तथा अध्यात्म पथ के संपादक आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी द्वारा लिखित 'सुखी जीवन के सुत्र' नामक पुस्तक का निःशुल्क वितरण किया गया। जन-जन की प्रेरणा स्रोत स्व. श्रीमती कृष्ण महाजन जी की सुपुत्री श्रीमती सुरेख चोपड़ा ने आचार्य श्री की सराहना करते हुए सभी का आभार प्रकट किया। शान्ति पाठ के उपरान्त प्रीतिभोज का आयोजन किया गया।

रामनवमी के अवसर पर विकासपुरी के राम मंदिर में वेदों का डंका बजाया आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी ने

अध्यात्म पथ के यशस्वी संपादक एवं अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के वैदिक आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री जी ने विकासपुरी, नई दिल्ली के राम मंदिर में रामनवमी के पावन पर्व के अवसर पर विशाल जनसमूह को संबोधित करते हुए कहा कि श्रीराम का सम्पूर्ण जीवन प्रेरक और आदर्श था। वे वेदप्रेमी, यज्ञ प्रेमी धर्मपरुष थे। धर्म की समस्त विशेषताएँ उनके चरित्र में थी। वे मर्यादाओंके पालक, रक्षक और संचालक थे। इन्हीं गुणों के कारण वे मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाये। आचार्य श्री ने कहा कि राम की पितृभक्ति का अनुकरण आज प्रत्येक युवक के लिए परमावश्यक है। श्री राम कहते हैं:-

अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयं अपि पावके। भक्षेयम् विषं तीक्ष्णं मज्जेयं अपि चार्णवे॥

मैं पिता की आज्ञा से जलती आग में कूद सकता हूं, तीव्र विष का पान कर सकता हूं तथा समुद्र में छलांग लगा सकता हूं। राम सीता से कहते हैं- माता पिता की सेवा करने वाले मनुष्य के लिए स्वर्ग, धन-धान्य, पुत्र और सुख कोई वस्तु दुर्लभ नहीं। राम सीता से कहते हैं - माता पिता की सेवा करने वाले मनुष्य के लिए स्वर्ग, धन-धान्य, पुत्र और सुख वस्तु दुर्लभ नहीं। वेदज्ञ विद्वान संसार पुनः स्वर्गधाम बनें, विश्व में व्याप्त भ्रष्टाचार, अत्याचार एवं कदाचार के तांडव नृत्य का शीघ्र अंत हो, तो हमें अपने जीवन में वेदों को अपनाना होगा तथा श्रीराम के गुण समाहित करने होंगे। इस शुभावसर पर श्री मुनीश्वर गुलाटी जी, श्रीमती कृष्ण गुलाटी जी एवं मंदिर के पदाधिकारियों ने आचार्य श्री का माल्यार्पण कर सम्मान किया। अन्त में विशाल भण्डारे का आयोजन किया गया।

डॉ. सुन्दरलाल कथूरिया
(साहित्य सम्पादक-अध्यात्मक पथ)

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-९ अंक-५ मुम्बई मई २०१८ पृष्ठ-१६ मूल्य- रु. ९/-

अधिक ज्येष्ठ - २०७४ (२०१८) Post Date : 25-05-2018

MCN/136/2016-2018
MAHRIL 06007/31/12/19-TC

पोष्ट आफिस : सांताक्रुज (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : संगीत आर्य

मुद्रक एवं प्रकाशक : चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्णा प्रिंटिंग प्रेस, २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। ● दूरभाष : २६६० २८०० / २६६० २०७५

प्रति,

टिकट

पं. रामचन्द्र देहलवी

डा. अशोक आर्य

नीमच नगर में सन् १८८१ ईस्वी को मुन्शी छोटे लाल के यहां जन्म लेने वाला बालक कभी आर्य समाज के गौरव का कारण बनेगा, यह किसी ने सोचा भी न था किन्तु इस बालक ने आगे चलकर आर्य समाज के कार्य को करते हुए जो कीर्तिमान स्थापित किये, वह आज आर्य समाज के गौरव पूर्ण इतिहास का अभिन्न अंग बन गए हैं। इसी बालक को ही आज हम आर्य स.ाज का महान् वक्ता, विदेशी (इस्लाम व ईसाई) मतों के मर्मज्ञ तथा अद्वितीय शास्त्रार्थ महारथी पं. रामचन्द्र देहलवी के नाम से जाने जाते हैं, जिनके किस्से सुनते हुए कई बार आश्चर्य होता है तो कई बार हंसी भी आती है। अल्पायु में माता का देहान्त होने व पिता के दूसरा विवाह करने पर बालक को नीमच की ही प्राथमिक शाला में प्रवेश लेकर अध्ययन आरम्भ करवाया गया। तत्पश्चात् डी०ए०बी० स्कूल अजमेर से मिडिल परीक्षा प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् आपने इन्दौर में प्रवेश लिया तथा अपनी शिक्षा की अन्तिम परीक्षा, जो कि ऐन्ट्रेन्स की थी वो भी आपने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने का गौरव प्राप्त किया।

मात्र १८ वर्ष की आयु में विवाह होने पर पारिवारिक जिम्मेदारी बढ़ गई, इस कारण नीमच में ही अध्यापन का कार्य आरम्भ किया। आपकी अध्यापन शैली से लोग अत्यधिक प्रभावित हुए किन्तु शीघ्र ही आपने इसे त्याग किया तथा रैली ब्रदर्स नामक दिल्ली की एक अंग्रेजी व्यवसायिक फर्म में मात्र १५ रुपए मासिक पर कार्य आरम्भ किया । आपने तन्मयता से कार्य किया। मालिक आपके कार्य से बहुत प्रसन्न था किन्तु अधिक कार्य करवाने के लालच में एक रविवार को भी कार्य पर आने का आदेश दे बैठा। बस यह आदेश ही आपके जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन का कारण बना। आपने तत्काल उत्तर दिया कि बाईबिल के अनुसार ईश्वर ने भी सृष्टि रचना करते समय रविवार को छुट्टी की थी फिर आप रविवार काम कैसे ले सकते हैं? इस उत्तर से निरूत्तर हुआ अंग्रेज मालिक और भी बिगड गया। बस फिर क्या था यह ईमानदार कर्मचारी दब कर काम करने को तैयार न हुआ तथा वहां से त्याग पत्र दे कर अपने स्वसुर के साथ व्यवसाय करने लगा। सम्भवतया यह आर्य समाज के मंगल के लिए ही था क्योंकि इस के पश्चात् उन्होंने देश, धर्म व समाज के लिए बेजोड़ कार्य किया। यही कार्य ही उनकी कीर्ति फैलाने वाला तथा आर्य समाज का नाम रोशन करने वाला बना।

उन दिनों दिल्ली फव्वारे पर मुसलमान व ईसाई दो दो दिन अपने प्रचारार्थ विचार रखते थे। इसमें वह हिन्दुओं पर अनेक प्रकार के आक्षेप करते। देहलवी जी चारों दिन यह सब सुनने के लिए जाने लगे। आर्य समाज का रंग तो उन पर था ही। हिन्दुओं पर आक्षेपों की चर्चा सुन कर हृदय मचलने लगा। अब उन्होंने भी शेष बचे दो दिन उसी स्थान पर अपनी सभा लगानी आरम्भ कर दी। इस सभा में वह उन दोनों समुदायों के न केवल आक्षेपों का उत्तर देते अपितु उन की कमियों पर भी चर्चा करने लगे। इससे उनके श्रोताओं की संख्या बढती गई तथा विधर्मियों की कम होते होते समाप्त हो गई। अब छः के छः दिन आपका व्याख्यान इस स्थान पर होने लगा। इस व्याख्यान से न केवल दिल्ली अपितु दूर दूर तक आपके तर्कों की चर्चा होने लगी तथा आर्य समाज के प्रचारार्थ दूरस्थ क्षेत्रों से भी आपको बुलावे आने लगे। यहां पर व्याख्यानों का क्रम १९१० ले १९५० तक निरन्तर चलता रहा।

दो महीने के अथक परिश्रम से आपने कुरान का अध्ययन किया तथा इसमें इतने दक्ष हो गए कि मुल्ला मौलवियों से भी कुरान का कही अधिक शुद्ध उच्चारण करने लगे। जब बाड़ा हिन्दू राव दिल्ली में पूर्ण आत्म विश्वास के साथ मुसलमानों से प्रथम बार शास्त्रार्थ किया तो आपके उत्साह में भारी वृद्धि हुई तथा आपके शास्त्रार्थों की बाढ सी आ गई। मुजफरनगर में ईसाई की मध्यस्थता में हुए शास्त्रार्थ मे आपको स्वर्ण पदक देते हुए विजयी घोषित किया गया। फिरोजपुर में मुसलमान से शास्त्रार्थ में आपके उच्चारण से गदगद् एक पठान मुस्लिम युवती ने यह करते हुए आपको दस रूपए का पुरस्कार दिया "साडे मौलवी पण्डित नूं एह दस रुपए मेरे वलों देई"। इस प्रकार पण्डित जी ने मुसलमानों, ईसाईयों व पौराणिकों से अनेक शास्त्रार्थ किये, जिनकी संख्या सैंकडों मे चली जाती है। देहलवी जी वह गहन अध्ययन, वाक्पटुता तथा प्रत्यन्न मति का अद्वितीय संगम थे। इसका उदाहरण देखिये, जब एक मौलवी ने कहा पण्डित जी मैं आप पर लघुशंका (मूंत्र) करना चाहता हूँ तो पण्डित जी ने झटपट कहा कि इसे आप कुछ देर अपने मुंह में ही रखिये। आपके शास्त्रार्थों की रक्षा तो नहीं हो सकी किन्तु आपकी अपने पुस्तके हमें मार्ग दर्शन देने के लिए उपलब्ध हैं।

३ फरवरी १९६८ को आर्य समाज दीवान हाल दिल्ली में आप इस शरीर को छोडकर चिरनिद्रा में लीन हो गए।

पॉकिट १ प्लाट १/१ रामप्रस्थ ग्रीन से. ७
वैशाली २०१०१० गाजियाबाद उ.प्र. भारत
चलभाष : ०९३५४८४५४२६